संपन्न भारत 1

विज्ञान और विश्वविद्यालय

डी० एस० कोठारी

साहित्य सगम, आगरा

प्रमुख वितरक
गयाप्रसाद एण्ड संस
सिटी स्टेशन रोड आगरा

लेखक डा० दौलतसिंह कोठारी
अध्यक्ष
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग

प्रकाशक साहित्य सदन
अस्पताल मार्ग,
सिटी स्टेशन रोड आगरा

मुद्रक एजुकेशनल प्रेस आगरा
[फोन : २७०८]

मूल्य : ३ रुपया

आवरण रूपाभा स्टूडियो, दिल्ली

संस्करण नवम्बर, १९६१

अपनी बात

यह पुस्तक डा० डी० एस० कोठारी के उन भाषणों का संकलन है जो उन्होंने पिछले दो तीन वर्षों में समय-समय पर दिये हैं। इनमें से कुछ भाषण लेखों के रूप में हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं और पुस्तक के अन्य लेख उनके अंग्रेजी भाषणों का हिन्दी रूपान्तर हैं। अभी तक डा० साहब के इन भाषणों का संकलन मूल अंग्रेजी में भी प्रकाशित नहीं हुआ है। अंग्रेजी से भी पहले हिन्दी में इस पुस्तक को प्रकाशित करने की डा० साहब द्वारा अनुमति प्रदान करना इस बात का प्रमाण है कि वे भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य के निर्माण की प्रक्रिया को अत्यधिक प्रोत्साहन और प्रेरणा देते हैं। इसके लिये हिन्दी जगत उनका हृदय से आभारी है, क्योंकि आपने इन लेखों में मानव समाज की सभी गतिविधियों को विज्ञान के माध्यम द्वारा प्रस्तुत किया है। सचमुच में हिन्दी साहित्य को इससे एक नया दृष्टिकोण मिला है।

लेखों की विषय सामग्री को देखते हुये इस पुस्तक को तीन खण्डों में विभाजित किया गया है (१) विज्ञान और विश्वविद्यालय (२) विज्ञान और प्रतिरक्षा और (३) विज्ञान साहित्य और मानव। पुस्तक का नाम

प्रमुख वितरक
गयाप्रसाद एण्ड संस
सिटी स्टेशन रोड आगरा

लेखक डा० दौलतसिंह कोठारी
अध्यक्ष
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग

प्रकाशक साहित्य संगम
सन्मति परिषद
सिटी स्टेशन रोड आगरा

मुद्रक एजुकेशनल प्रेस आगरा
[फोन : ७०७८]

मूल्य ५ रुपया

आवरण रूपारम्भ स्टूडियो, दिल्ली

संस्करण नवम्बर, १९६१

डा० साहब के भारतीय विज्ञान कांग्रेस के पचासवें सम्मेलन के अध्यक्षीय भाषण के नाम पर रखा गया है जो पुस्तक का प्रथम लेख भी है।

डा० साहब के विचारों को हिन्दी में प्रस्तुत करते समय भाषा की सरलता का काफी ध्यान रखा गया है पर उनके महान वैज्ञानिक विचारों को व्यक्त करते समय फिर भी कहीं-कहीं भाषा कठिन और दुरूह हो गई है। लेखों में की पुनरावृत्ति के उन दोषों को काफी कम करने की कोशिश की गई है जो भाषणों में आने स्वाभाविक होते हैं।

हम इसे अपने लिये परम सौभाग्य की बात मानते हैं कि देश के प्रमुख वैज्ञानिक-विचारक डा० कोठारी के विचारों को सबसे पहले हिन्दी साहित्य में लाने का सौभाग्य हम प्राप्त हुआ है। आशा है हिन्दी पाठक इसका स्वागत करेंगे। हमारी योजना है कि हम इस पुस्तकमाला के अन्तर्गत देश के अन्य प्रसिद्ध वैज्ञानिकों के विचारों को भी प्रकाशित कर सकें।

प्रकाशक

विषय-सूची

भाग 1 विज्ञान और विश्वविद्यालय

विज्ञान और विश्वविद्यालय

की आयु 20–30 अरब साल मानें तो लगभग सूरज 10 अरब साल पुराना है और इसकी आयु इतनी ही और होगी। दूसरी ओर बहुत चमकदार 'ओ' टाइप के तारे की आयु कुछ 10 लाख साल ही है। सूरज की रासायनिक रचना से यह मालूम होता है कि यह ब्रह्माण्ड सृजन के दूसरे चरण में या इससे बाद के चरण में बना हो। सृजन के प्रथम चरण में तारे मूलतः विशुद्ध हाइड्रोजन के बने थे। इन तारों में स्थित हाइड्रोजन अत्यधिक गर्मी के कारण दूसरे मूलतत्वों म—हीलियम से यूरेनियम तक—बदल गई। इनमें से कुछ तारे विस्फोटित होकर उनके अन्दर का पदार्थ अन्तरिक्ष में बिखर गया। इनके बिखरे इस पदार्थ ने दूसरे चरण में बनने वाले तारों के अन्दर प्रवेश कर लिया। इन्हीं में से एक हमारा सूरज भी है। हमारी पृथ्वी को अपना वर्तमान रूप आज से 5 अरब साल पहले मिला। हमारी पृथ्वी पर सबसे आदिम जीव 2 अरब साल पहले पैदा हुए, आदिम-चिड़िया और स्तनधारी जीव 20 करोड़ साल पहले पैदा हुए और आदमी का लगभग 10–20 लाख साल पहले पदार्पण हुआ। खेती 10 हजार साल से पुरानी नहीं मालूम पड़ती और आदमी ने लिपि का आविष्कार लगभग 6 हजार साल पहले किया। किन्तु मनुष्य के मानसिक सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक वातावरण के महत्त्व पूर्ण तत्त्व के रूप में पिछली कुछ शताब्दियों से सक्रिय है

"मनुष्य अब कुछ नियन्त्रित दशाओं में एक ऐसे शक्ति-स्रोत का विकास कर रहा है जो रासायनिक शक्ति (ऊर्जा) से लाखों करोड़ों गुना शक्तिशाली है। आणविक शक्ति को अपनी सेवा में लगाने के लिये कला-कौशल व दस्तकारियों की अपेक्षा गहरी पैठ और सैद्धान्तिक विज्ञान की पर्याप्त प्रगति जरूरी है। ऐसा मालूम होता है कि मनुष्य अब न केवल 'एक विश्व' का नागरिक बनने जाता है—बल्कि ब्रह्माण्ड का नागरिक बनने के लिये प्रयत्नशील है।" यह ब्रह्माण्ड भी कोई छोटी-मोटी चीज नहीं है। हमें अभी यह भी नहीं मालूम कि ब्रह्माण्ड ससीम है या असीम। लेकिन रेडियो-खगोल-शास्त्र में हुई अब तक की प्रगति से इस प्रश्न का उत्तर कुछ ही वर्षों में मिलने की सम्भावना है। ब्रह्माण्ड के जितने भाग का पता लगाया जा चुका है उसमें लगभग 19 अरब आकाश गंगायें हैं और हरेक आकाश गंगा में 10 अरब तारे हैं। एक औसत आकाश गंगा का व्यास लगभग एक लाख प्रकाश वर्ष है। (एक वर्ष में प्रकाश 1,86,000 मील प्रति सैकिंड की गति से जितना मार्ग पाता है उसे एक प्रकाश-वर्ष कहते हैं।) तारों के बीच की गैस प्रत्येक आकाश गंगा के भार का 1-10 प्रतिशत तक होती है। हाल में ही कुछ ऐसे ग्रह-मंडलों का पता चला है जो हमारे सौर परिवार से सम्बन्ध नहीं रखते। किसी भी ग्रह का अधिकतम व्यास बृहस्पति के व्यास से ज्यादा नहीं

हो सकता। यह तो प्रायः निश्चित ही है कि केवल इस पृथ्वी पर ही बुद्धिमान प्राणी नहीं रहते। सम्भव है कि निकट भविष्य में मनुष्य किसी प्रकार की अन्तरिक्ष-टेलीफोन व्यवस्था द्वारा अन्य लोकों से सम्पर्क स्थापित कर सके।

सहयोग प्रधान विज्ञान

'विज्ञान की असली शक्ति सत्य को पाने के लिये अथक कठोर और निडर प्रयत्नों में निहित है। आज से 100 वर्ष पहले विज्ञान की प्रयोगशालाएँ बहुत कम होती थीं और वे अजीबो-गरीब चीज मानी जाती थीं। पर आज तो वे दुनिया भर में फैली हुई हैं।" भारत में सबसे पहले विज्ञान कलकत्ता हिन्दू कालिज (प्रेसीडेन्सी कालिज) में सन् 1870 में राजा राममोहन राय के नेतृत्व में पढ़ाना शुरू किया गया था। विज्ञान में कहीं कोई खोज होती है तो वह सभी की साझी सम्पत्ति बन जाती है। विज्ञान की भाषा वास्तव में सभी वैज्ञानिकों के लिये एक है और इसकी उपलब्धियाँ सम्पूर्ण मानव समाज की धरोहर हैं। विज्ञान की दुनिया उन्मुक्त है और विज्ञान युद्ध प्रयत्नों से सम्बद्ध होने के बावजूद भी केवल थोड़ी-सी पक्षधरता को छोड़कर विज्ञान की दुनिया में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। विज्ञान की एकता का उदाहरण एकदम हमारे दिमाग में तभी कौंध जाता है जब हम प्रकृति के मूलभूत कणों को दो नामों से पुकारते हैं।

चाहे वे एल्क्ट्रोन हों ऐन्टी प्रोटोन हों या न्यूट्रोन हों। एक वर्ग के कण 'फरमियोन्स' कहलाते हैं चूंकि ऐनरिको फर्मी ने सबसे पहले दिसम्बर 1942 में इनका पता लगाया था। दूसरे वर्ग के कणों को 'बोसोन' कहते हैं जिनका पता प्रोफेसर सत्येन बोस ने लगाया था। बोस और फर्मी दोनों वैज्ञानिकों ने सन् 1924 के करीब 'क्वान्टम स्टेटिसटिक्स' का सबसे पहले अध्ययन किया था। विज्ञान में पहला स्थान सहयोग को है प्रतियोगिता को नहीं और विज्ञान की दुनिया मनुष्य की उच्चतम महत्वाकांक्षाओं और योग्यताओं में निहित है। जैसे जैसे विज्ञान का विकास होता जाता है त्यों त्यों अनुसंधान का काम ज्यादा पेचीदा और महंगा होता जाता है। विज्ञान में कोई कोई तो ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ तमाम संसार भर के वैज्ञानिकों के समन्वित सहयोग की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए मनुष्य की अन्तरिक्ष और दूसरे ग्रहों तक की उड़ान के लिए ऐसे सहयोग की जरूरत है। मूलभूत कणों के बीच होने वाली अन्त:क्रियाओं को जानने के लिए 10 खरब एलक्ट्रोन वोल्ट के एक्सलरेटर की जरूरत होती है। इसके लिए भी तमाम दुनिया के वैज्ञानिकों के सहयोग की जरूरत पड़ती है।

विज्ञान की मानव को एक प्रत्यक्ष देन तो यही है कि आजकल मानवीय जीवन की औसत आयु तमाम संसार में बढ़ गयी है और किसी किसी देश में तो आयु की औसत

कुछ सौ वर्षों पहले की अपेक्षा तीन गुनी तक हो गयी है। भले ही दुनिया भर में कितनी ही फूट हो संघर्ष हो पर यह बात तो निश्चित है कि संसार में पहली बार विज्ञान के क्षेत्र में इतने बड़े पैमाने पर सहयोग हो रहा है जितना कि पहले कभी नहीं हुआ था। दो वर्ष भी नहीं हुये कि संयुक्त राष्ट्र संघ ने एक प्रस्ताव पारित किया कि दुनिया के समृद्ध देशों को कम विकसित देशों की मदद करनी चाहिये ताकि उनकी राष्ट्रीय आमदनी में 5 प्रतिशत प्रति वर्ष की बढ़ोती वर्तमान दशक के अन्त तक हो जाय। यदि 5 प्रतिशत बढ़ोती को ध्यान में रखकर हिसाब फैलाया जाय तो 15 वर्ष में आय दुगनी हो जायेगी। हाल के कुछ वर्षों में अमेरिका की अर्थ व्यवस्था का विकास लगभग 4 प्रतिशत रहा है और रूस में करीब इसका दुगना। ऊपर दिये हुए लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये बहुत बड़ी सहायता की अर्थात् लगभग 10 अरब डॉलर की दीर्घकालीन मदद की आवश्यकता पड़ेगी। यह सहायता समृद्ध देशों की राष्ट्रीय आय का कुल 1 प्रतिशत है। स्मरण रहे कि 10 अरब की यह धन राशि समृद्ध देशों के अतिरिक्त वार्षिक बजट का दसवाँ भाग है। यदि संसार में निरस्त्रीकरण हो जाये तो संसार आसानी से ज्यादा समृद्ध हो सकेगा।

आज के समाज पर विज्ञान का इतना जबर्दस्त प्रभाव पड़ा है कि इससे पहले मानव इतिहास में कभी इतनी

अनिश्चितता देखने में नहीं आई जितनी कि आज है। इसकी खास वजह यही है कि विज्ञान की वैज्ञानिक खोजें भी अनिश्चित होती हैं। सन् 1905 में आइन्स्टीन ने भार और ऊर्जा को सम्बन्धित करने वाला $E=mc^2$ नाम का प्रसिद्ध समीकरण बनाया। क्या पता था कि उसके केवल 50 वर्षों के अन्दर यह समीकरण महान् विध्वंसक अणु अस्त्रों के बनाने में काम आएगा और जिससे पुराने तरीके की लड़ाइयाँ बेकार सी लगने लगेंगी। अमूर्त जिसे हम आज बेकार मानते हैं मूर्त तक पहुँचने का सबसे छोटा रास्ता है। लेकिन पहले से इस रास्ते का पता नहीं चलता। मोटे तौर पर हम विज्ञान के लिए योजना तैयार कर सकते हैं पर स्वयं विज्ञान का संयोजन नहीं किया जा सकता।

भावी घटनाओं की अनिश्चितता और मानव की स्वतंत्र वृत्ति के सम्बन्ध में आइन्स्टीन के कुछ विचार उल्लेखनीय हैं

'मैं दार्शनिक तौर पर मानव की स्वतन्त्रता में विश्वास नहीं करता। प्रत्येक व्यक्ति न केवल बाहरी मजबूरी पर ही काम करता है वरन् आन्तरिक आवश्यकता के अनुसार भी काम करता है। शॉपनहावर कहता है—आदमी जो चाहे सो करता है लेकिन वह अपनी इच्छा वैसी नहीं बना पाता जैसा कि वह चाहता है। वास्तव में मुझे बचपन से ही इस बात ने बहुत प्रेरित किया है।

> जब कभी अपनी या किसी और की शिकस्तें मेरे सामने आयीं तो इस गुण से मुझे बहुत सान्त्वना मिली और इस सहिष्णुता का स्रोत कभी कम नहीं हुआ। इसी अनुभूति के कारण हमें उत्तरदायित्व का बोझ कम मालूम होता है—वास्तव में यह एक विशेष दृष्टिकोण है जिससे जीवन में विनोद को भी स्थान मिलता है।

प्लांक का कहना है कि स्वतन्त्रता के बारे में हमारी धारणा भ्रान्तिपूर्ण है। जब हम सोचते हैं कि हमने कोई काम अपनी मुक्त इच्छा से किया है तो वास्तव में उस काम को रोकने की जिम्मेदारी हम अचेतन मस्तिष्क पर छोड़ देते हैं और बाद में फल पाने के श्रेय का दावा करते हैं।

इतिहास में अनिश्चितता का तत्त्व तो विज्ञान के कारण ही हुआ है। बाकी दो और ऐसे गुण हैं जो वैज्ञानिक क्रान्ति की देन हैं यानि विज्ञान के विकास की गति और विश्वविद्यालयों की नयी उपयोगिता और उनका महत्त्वपूर्ण योग।

विज्ञान के विकास की गति

जरा विज्ञान के विकास की गति की ओर ध्यान दीजिए। विज्ञान की आज तक की सारी सफलताएँ वास्तव में अद्भुत हैं। इन सफलताओं से ज्यादा अद्भुत है विज्ञान के

विकास की गति। डी॰एस॰प्राइस के अध्ययन के अनुसार विज्ञान के अनेक सूचक-बिन्दुओं से पता चलता है कि पहले दो सौ सालों में वैज्ञानिक ज्ञान और इससे सम्बन्धित चीजों की प्रगति की औसत दर प्रति-वर्ष 5-7 प्रतिशत रही है। इसके मतलब होते हैं कि इसकी दुगुन-अवधि 10 वर्ष है। उदाहरण के तौर पर विज्ञान से सम्बन्धित पत्रिकाओं को ही ले लीजिए जो वैज्ञानिक क्रान्ति को आगे बढ़ाने का मुख्य वाहन रही हैं। 1750 में कुछ ही वैज्ञानिक-पत्रिकाएँ थीं जो कि 1850 में बढ़कर 1000 हो गयीं और इस समय इनकी संख्या लगभग 1,00,000 है। शायद इस शताब्दी के अन्त तक इनकी संख्या 10,00,000 हो जाएगी। विज्ञान कांग्रेस में पढ़े जाने वाले लेखों की बात लें। 1914 के सबसे पहले सम्मेलन में इनकी संख्या 35 थी। उस वर्ष विज्ञान कांग्रेस की आय 883 रु॰ थी और व्यय 504 रु॰ था। इसी प्रकार 1930 में रजत जयन्ती अधिवेशन में पढ़े गए अनुसंधान लेख 900 थे जो कि 1962 के अधिवेशन में 1300 तक पहुँच गए। इन आंकड़ों के आधार पर इनकी दुगुन अवधि 10 वर्ष से कम बैठती है। यह भी एक विचित्र बात है कि पिछली 2 शताब्दियों में खोजे गये मौलिक कणों की दुगुन-अवधि भी 10 वर्ष है। इसी दर से वैज्ञानिकों की संख्या भी बढ़ रही है। वैज्ञानिकों की संख्या मोटे तौर पर उस समय तक छपे अनुसंधान लेखों की एक

विद्वाई होती है। पर इस वृद्धि का सम्बन्ध केवल ज्ञान के विस्तार और गहराई से है न कि मस्तिष्क की श्रेष्ठता से। यह जरूरी नहीं है कि आज का कोई आर्कमिडीज और आर्यभट्ट अपने पूर्ववर्ती वैज्ञानिकों से श्रेष्ठ बुद्धिवाला हो। यह बात लगभग जीवन की आयु की तरह ही है। यह माना कि जीवन की औसत आयु विज्ञान के कारण अब काफी बढ़ गई है। पर मनुष्य की अधिकतम आयु लगभग वहीं की वहीं है।

वैज्ञानिकों की दुगन-अवधि 15 साल है। इसके मत-लब यह होते हैं कि अब तक संसार में जितने वैज्ञानिक हुए हैं उनका 90 प्रतिशत आज भी जिन्दा है। अब तक हम यह नहीं समझ पाए हैं कि विज्ञान की दुगन-अवधि 10-15 वर्ष ही क्यों होती है। जाहिर है कि विकास की यह भयानक गति अनंत काल तक नहीं चल सकती। यदि वैज्ञानिकों की संख्या अगले 10 वर्षों में भी वर्तमान गति से ही बढ़ती रही तो वैज्ञानिक लगभग संसार की कुल आबादी के बराबर हो जायेंगे जो असम्भव है। इसलिए देर या सबेर में वैज्ञानिकों के बढ़ने की गति कम हो जायेगी और शायद आखिर में इसकी गति भी इतनी ही रह जायेगी जितनी जनसंख्या के बढ़ने की गति रह गई है। जो देश विज्ञान के क्षेत्र में सबसे आगे हैं उनमें आज इस तथ्य के दर्शन भी होने लगे हैं। विज्ञान के भयानक गति से बढ़ने

का एक नतीजा यह निकला है कि किसी बुनियादी ईजाद और उसको व्यावहारिक बनाने का समयान्तर बराबर घटता जा रहा है। पिछली सदी में इन कामों के बीच का अन्तर कुछ दशक का लेकिन अब यह एक दशक से भी कम रह गया है जैसा कि ट्रांजिस्टर और लेसर की ईजाद और उसके व्यावहारिक उपयोग के समयान्तर से पता चलता है। "विज्ञान के बढ़ने की गति इतनी तेज है कि जब तक कोई वैज्ञानिक जवान हो कर आता है तब तक वह पुराना पड़ जाता है और जब तक किसी बड़े हथियार का चलन का काम बड़े पैमाने पर शुरू होता है तब तक वह भी पुराना पड़ जाता है।

अमीर और गरीब देश

आज के युग में अमीर देश वे हैं जो विज्ञान में अमीर हैं और गरीब वे हैं जो विज्ञान में पिछड़े हुए हैं। मानवता का इन दो वर्गों में बँट जाना अपेक्षाकृत कुछ नयी बात है और इसका कारण यह है कि कुछ देशों ने विज्ञान के प्रसाधनों का भरपूर लाभ उठाया है और दूसरे कुछ देश इसका इतना लाभ नहीं उठा सके। वैज्ञानिक क्रांति का यह एक बदकिस्मत पहलू है कि अमीर देशों की अर्थव्यवस्था जहाँ सतत प्रगतिशील है, गरीब देशों की अर्थव्यवस्था वहीं की वहीं रुकी है। इसका मतलब यह भी है कि गरीब और

अमीर देशों के बीच का अन्तर न केवल ज्यादा है बल्कि समय के साथ बढ़ता भी जा रहा है। गरीब देशों में खेती से पैदा होने वाली चीजों के दाम सदा प्रायः एक से रहते हैं जबकि धनी देशों में पैदा की जाने वाली औद्योगिक चीजों के दाम निरन्तर बढ़ते रहते हैं। इस तरह विकासशील देशों के लिए उत्पादक सामान और मशीनें बाहर से मँगाना मुश्किल हो जाता है। पाल हॉफमैन ने बताया है कि विकासशील देशों को 1958 में सहायता के रूप में लगभग 2·4 अरब डालर दिये गये। इस वर्ष उन्हें आयात की गयी वस्तुओं पर दो अरब डालर उस धन राशि से ज्यादा खर्च करना पड़ा जो उनको अपनी खेती में पैदा होने वाले माल को दूसरे देशों को बेचने से मिली थी। इस तरह दी जाने वाली सहायता तो बहुत कुछ यों ही खर्च हो जाती है। इस समस्या का कुछ हल तो निकलना ही चाहिए। इसके लिए साहसी कदम उठाने पड़ेंगे और दूरदर्शिता से काम लेना होगा। विकसित और अविकसित देशों के बीच का अन्तर दोनों ही के लिए बुरा है। जितने लोग ब्रिटेन में रहते हैं भारत में रहने वाले उतने लोगों की आमदनी कुल इतनी है जितना कि इंग्लैण्ड के लोग सिगरेट और तम्बाकू पर फूँक देते हैं। अब यह सिद्ध हो चुका है कि सिगरेट-तम्बाकू से फेफड़ों का कैंसर होने का डर रहता है। अगर अमीर देश जितना पैसा इस तरह

सिगरेट तम्बाकू पर फूंक देते हैं उतना वे नये विकासशील राष्ट्रों को उनका खाद्य उत्पादन बढ़ाने के लिए सहायता रूप में दे दें तो इससे लाखों को लाभ पहुंचेगा। इस सम्बन्ध में यह बात याद रखने की है कि धनी देशों की समृद्धि को बढ़ाने में अन्य देशों के भौतिक स्रोतों शिल्प और मस्तिष्क का योग दान कम नहीं है। भारतीय हस्तकला कौशल की ऊँची किस्म की असाधारणता इसका एक उदाहरण है और जिसके बारे में रॉयल सोसायटी के एक सेक्रेटरी मी हूके ने 1686 के एक पत्र में लिखा था "मैंने एक भारी विचित्रता देखी है। यह भारत से आई हुई कैलिको कमीज है। यह बिना सिलाई के एक ही टुकड़ों को बुनकर बनाई गई है। यदि मैंने यह न देखी होती तो मैं इसे एक असम्भव बात मानता। इससे हमारे संतों में सेमेयर कोट की व्याख्या हो जाती है जो बिना सिले तैयार किये जाते थे।

विकास की प्रगति के बीज

पहले जमाने में जब एक देश दूसरे देश की मदद करता था तो उसे राजनैतिक दबाव या युद्ध के कारण यह मदद करनी पड़ती थी। इसमें जो कुछ प्राप्त होने वाले देश को मिलता था वह दाता देश का नुकसान होता था। यदि यह केवल जमीन या भौतिक साधनों की अदला-बदली ही होती थी तो सदा ही एक देश की कीमत पर दूसरा

देश समझता था। लेकिन आजकल के जमाने में जब समृद्धि और प्रगति मुख्य रूप से विज्ञान और टेक्नोलोजी को अधिकाधिक उपयोग में लाने पर निर्भर करती है यह स्थिति पूरी तरह से बदल गयी है। किसी कम विकसित देश को वैज्ञानिक ज्ञान की टेक्नीकल विधियाँ बता कर और इस तरह उसकी मदद करके दाता देश कुछ भी नहीं खोता। हालांकि यह पेचीदा तथ्यों का जरूरत से ज्यादा सरलीकरण है फिर भी हमें इस महत्वपूर्ण बात को समझ लेना चाहिए कि विज्ञान का अत्यधिक तेजी से बढ़ना एक ऐसी बात हो गई है जिससे यदि कोई आधुनिक देश चाहे तो पिछड़े देशों को आधुनिक बनाने में बड़ी मदद कर सकता है। क्योंकि वैज्ञानिक ज्ञान उससे भी कम समय में दुगुना हो जाता है जितना जनसंख्या को दुगुनी होने में समय लगता है। आधुनिक देश अगर चाहें तो आवश्यक संख्या में प्रशिक्षित कारीगर, साज सामान देकर मदद पहुँचाने वाले देश के विकास की श्रृंखला प्रक्रिया को आरम्भ करने म बुनियादी बीज का काम कर सकता है और ऐसा करने से इसकी आर्थिक दशा भी कोई विशेष प्रभावित नहीं होती। यह माना कि स्थानीय प्रयत्न और पहल का बाहरी सहायता कोई स्थान नहीं ले सकती। असल में तो बाहरी सहायता का सही देश दरकार है जो अपने स्थानीय प्रयत्नों को इतना बड़ा बना देता है कि

बिना सहायता के भी यह काम चला सके। हाँ वैज्ञानिक सहायता लिए बिना विकास की प्रगति मन्द अवश्य हो सकती है। यहाँ यह कहना अनुचित न होगा कि भौतिक साधनों और क्षेत्रों की कमी नहीं है। सम्भवतः तेजी से विकास करने के लिए मुख्य बाधाएँ सामाजिक और मनोवैज्ञानिक हैं।

उन देशों में जहाँ पर विज्ञान का व्यावहारिक उपयोग का काम अभी शुरू हुआ है यदि दृढ़ निश्चय कर लिया जावे तो इनके विकास की गति उन देशों की अपेक्षा कहीं अधिक हो सकती है जहाँ पर विज्ञान को व्यवहार में लाने का काम काफी पहले शुरू हो चुका है। ऐसा कई देशों में हुआ भी है। ऐसा लगता है कि विज्ञान को व्यावहारिक उपयोग में लाने वाले ये दोनों देश कुछ समय बाद समान स्तर पर आ जाते हैं और फिर दोनों देशों की एकसी प्रगति होने लगती है। इससे अधिक प्रगति सम्भवतः इन देशों को प्राप्त नहीं हो पाती।

विज्ञान और कृषि

जिन देशों में कृषि को वैज्ञानिक रूप दे दिया गया है। वहाँ पर उपज बहुत तेजी से बढ़ी है। लेकिन जहाँ पर खेती में विज्ञान का उपयोग नहीं किया गया है वहाँ पर उत्पादन लगभग नहीं के बराबर बढ़ा है, जैसा कि चार्ट रचरकोर्ड

ने 1938 में होने वाली भारतीय विज्ञान कांग्रेस के रजत जयन्ती के अवसर पर भाषण देते हुए कहा था "कि भारत में गेहूँ का वार्षिक उत्पादन 1914 में 85 लाख टन था जो इस वर्ष बढ़कर 95 लाख टन हो गया जब कि इसी काल में खाद्यान्न का आयात 10 लाख टन से घटकर केवल 10 हजार टन रह गया। आजकल गेहूँ की खपत लगभग 110 लाख टन है।"

रदरफोर्ड ने कहा था 'उपरोक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि अनुसंधान की किसी भी राष्ट्रीय योजना में खाद्यान्नों के अनुसंधान को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। भारतीय कृषि पद्धति में सुधार के अतिरिक्त फसलों के सुधार की दिशा में वैज्ञानिक ज्ञान का उपयोग करने के लिए बड़ा क्षेत्र अछूता पड़ा है। उदाहरण के लिए स्थानीय दशाओं के अनुकूल उन्नत बीजों की खोज करना, उर्वरकों पर खोज तथा अन्य ऐसी दशाओं में खोज करना' लगभग 20 वर्ष पूर्व कही गयी ये बातें आज भी उतनी ही लागू होती हैं।

वैज्ञानिक जनशक्ति और विकास-अनुसंधान व्यय

जो धन अनुसंधान और विकास पर व्यय किया जाता है वह अपने में पूरी तरह से या राष्ट्रीय दृष्टि से किसी देश के वैज्ञानिक विकास का संतोषजनक संकेत-चिह्न नहीं

माना जा सकता। इस बात पर यह चिह्न अधिक निर्भर करेगा कि देश के साधन और स्रोत कितनी अधिक अच्छी तरह से उपयोग किये गये हैं। लेकिन फिर भी कुछ सीमा तक यह संकेत-चिह्न महत्त्वपूर्ण है। आजकल संयुक्त राज्य अमरीका की सरकार अपने कुल राष्ट्रीय उत्पादन का 2·8 प्रतिशत अनुसंधान विकास और सुरक्षा के नये उपकरणों की परख पर खर्च करती है। (इसके अतिरिक्त वहाँ के उद्योग भी लगभग 5 अरब प्रतिवर्ष खर्च करते हैं) अर्थात् इसके मतलब यह हुए कि 7500 करोड़ रुपये प्रति वर्ष अमरीका में अनुसंधान और विकास पर खर्च किये जाते हैं। इसमें से तीन चौथाई भाग सुरक्षा क्षेत्र में खर्च होता है। हमारे देश में अनुसंधान और विकास पर कुल उत्पादन का केवल 0·2 प्रतिशत ही खर्च होता है। इस सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि जो देश वैज्ञानिक ज्ञान के उपयोग करने के प्रथम चरण से निकल चुके हैं उनकी प्रगति हास के वर्षों में बहुत तेजी से हुई है। उनकी द्विगुण-अवधि 10 वर्ष से भी कम है। बीस वर्ष पहले संयुक्त राज्य अमरीका में कुल उत्पादन का केवल 0 5 प्रतिशत अनुसंधान और विकास पर खर्च किया जाता था जबकि 1920 में यह केवल (1 प्रतिशत था। 1940 में वहाँ की सरकार ने 7·4 करोड़ डालर और 1953 में 2 अरब डालर विकास और अनुसंधान पर खर्च किये थे।

इंग्लैण्ड की सरकार ने 1939 में 35 लाख पौंड वैज्ञानिक अनुसंधान पर खर्च किया था। आजकल इस पर साढ़े चार करोड़ पौंड खर्च हो रहा है।

सरकार और उद्योग द्वारा अनुसंधान और विकास पर होने वाला खर्च 1956 में 30 पौंड करोड़ और 1962 में 63 करोड़ पौंड था जो कुल राष्ट्रीय उत्पादन का 1·7 से बढ़ कर 2·7 प्रतिशत हो गया था। आज कल अनुसंधान और विकास का बजट कुछ दशाब्दियों पूर्व के सारे सरकारी बजट से अधिक बढ़ गया है। 1909 में कुल बजट 15 करोड़ पौंड था।

तभी अधिक अनुसन्धान हो सकता है जब काफी आदमी अनुसन्धान करने वाले हों। अमरीका में वैज्ञानिक और इन्जीनियरों का अनुपात कुल जनसंख्या का डेढ़ प्रतिशत है। 1940 में यह केवल 0·6 प्रतिशत था। 1970 में यह बढ़कर 2 प्रतिशत हो जायगा। पता चला है कि राष्ट्रीय आय का अनुसन्धान और विकास पर होने वाला व्यय है और कुल जनसंख्या में मौजूद वैज्ञानिक और इन्जीनियरों के प्रतिशत के बीच कुछ निश्चित अनुपात होता है। इसलिए यदि इनमें से पहला ऊँचा और दूसरा नीचा है तो निश्चित रूप से हो कहीं कुछ गड़बड़ी होगी। ज्यादा विकास पाने के लिए हमें ज्यादा वैज्ञानिकों की जरूरत है क्योंकि विज्ञान और मनुष्य

षकि पर हुआ सर्वा साथ-साथ चलता है। यह बात हम वैज्ञानिक क्रान्ति के तीसरे मुख्य पहलू पर ले आती है।

विज्ञान और मानवता

वैज्ञानिक क्रान्ति के शुरू के दिनों में विश्वविद्यालयों में विज्ञान को लगभग कोई स्थान प्राप्त नहीं था यद्यपि यह माना कि उस जमाने में भी विज्ञान के क्षेत्र में कुछ व्यक्तियों ने ऊँचे काम किये थे। लेकिन आमतौर पर विज्ञान का मजाक उड़ाया जाता था और विज्ञान का पक्ष लेने वालों को चिढ़ाया जाता था। उदाहरण के लिए स्टील' ने 'टैटलर' नाम की पत्रिका में—'मस्तिष्कहीन बालक' नाम का वह लेख जो रॉमस साराइटी' में छपा था—के बारे में कहा था कि यह बड़े गर्व की बात है कि यह मस्तिष्कहीन बालक अधिक दिन तक जिन्दा नहीं रह सका नहीं तो वह रॉयल सोसाइटी का योग्य प्रधान बन सकता था। उस जमाने में जादू टोना में यकीन रखना प्रगतिशील विचारों की निशानी था और औषधि-विज्ञान में औषधि-मिश्रित ज्योतिष सबसे बड़ी मानी जाती थी। उस जमाने में प्रकृति का सही और परीक्षण योग्य ज्ञान जो मनुष्य के मस्तिष्क को रूढ़ियों कुसंस्कारों भय और सत्ता से मुक्त करता था नहीं पाया जाता था। उस जमाने के विश्वविद्यालयों में

इंग्लैण्ड की सरकार ने 1939 में 35 लाख पौंड वैज्ञानिक अनुसंधान पर खर्च किया था। आजकल इस पर साढ़े चार करोड़ पौंड खर्च हो रहा है।

सरकार और उद्योग द्वारा अनुसंधान और विकास पर होने वाला खर्चा 1956 में 30 करोड़ पौंड और 1962 में 63 करोड़ पौंड था जो कुल राष्ट्रीय उत्पादन का 1·7 से बढ़ कर 2·7 प्रतिशत हो गया था। आज कल अनुसंधान और विकास का बजट कुछ दशाब्दियों पूर्व के सारे सरकारी बजट से बहुत बढ़ गया है। 1909 में कुल बजट 15 करोड़ पौंड था।

तभी अधिक अनुसन्धान हो सकता है जब काफी आदमी अनुसन्धान करने वाले हों। अमरीका में वैज्ञानिक और इंजीनियरों का अनुपात कुल जनसंख्या का डेढ़ प्रतिशत है। 1940 में यह केवल 0·6 प्रतिशत था। 1970 में यह बढ़कर 2 प्रतिशत हो जायगा। पता चला है कि राष्ट्रीय आय का अनुसन्धान और विकास पर होने वाला व्यय है और कुल जनसंख्या में मौजूद वैज्ञानिक और इंजीनियरों के प्रतिशत के बीच कुछ निश्चित अनुपात होता है। इसलिए यदि इनमें से पहला ऊँचा और दूसरा नीचा है तो निश्चित रूप से ही कहीं कुछ गड़बड़ी होगी। ज्यादा विकास पाने के लिए हमें ज्यादा वैज्ञानिकों की जरूरत है क्योंकि विकास और मनुष्य

ताक पर हुआ चर्चा साथ-साथ चलता है। यह बात हमें वैज्ञानिक क्रान्ति के तीसरे मुख्य पहलू पर ले आती है।

विज्ञान और मानवता

वैज्ञानिक क्रांति के शुरू के दिनों में विश्वविद्यालयों में विज्ञान को लगभग कोई स्थान प्राप्त नहीं था यद्यपि यह माना कि उस जमाने में भी विज्ञान के क्षेत्र में कुछ व्यक्तियों ने ऊँचे काम किये थे। लेकिन आमतौर पर विज्ञान का मजाक उड़ाया जाता था और विज्ञान का पक्ष लेने वालों को चिढ़ाया जाता था। उदाहरण के लिए 'स्टील' ने 'टैटलर' नाम की पत्रिका में—'मस्तिष्कहीन बालक' नाम का वह लेख जो रॉयल सोसाइटी के 'ट्रांजैक्शन्स आफ दी रॉयल सोसाइटी' में छपा था—के बारे में कहा था कि यह बड़े खेद की बात है कि वह मस्तिष्कहीन बालक अधिक दिन तक जिन्दा नहीं रह सका नहीं तो वह रॉयल सोसाइटी का योग्य सदस्य बन सकता था। उस जमाने में जादू टोना में यकीन रखना प्रगतिशील विचारों की निशानी था और औषधि-विज्ञान में औषधि-फलित ज्योतिष सबसे बड़ी मानी जाती थी। उस जमाने में प्रकृति का सही और परीक्षण योग्य ज्ञान जो मनुष्य के मस्तिष्क को रूढ़ियों दुर्भरकारी भय और सत्ता से मुक्त करता था नहीं पाया जाता था। उस जमाने के विश्वविद्यालयों में

धार्मिक शिक्षा, व्याकरण, कविता और गणित ज्योतिष प्रमुख विषय रहते थे। लेकिन जैसे जैसे वैज्ञानिक क्रांति की गति बढ़ती गयी त्यों त्यों विज्ञान को विश्वविद्यालयों में अधिकाधिक स्थान प्राप्त होने लगा। लेकिन विश्व विद्यालयों में उसके प्रवेश का विरोध हुआ और बड़ी अनिच्छा से उसको स्थान दिया गया। आज तो हालत बिल्कुल बदल गई है और अब हवा का रुख पूरी तरह पलट गया है अर्थात् विश्वविद्यालयों में विज्ञान को अत्यधिक महत्व दिया जाने लगा है। लेकिन जो एक जमाने में विज्ञान के साथ घटा था वही बात अब टैक्नोलोजी के साथ हो रही है। विज्ञान कांग्रेस जैसी संस्थायें विज्ञान और टैक्नोलोजी के मानवीय पक्ष को मान्यता दिलाने में काफी महत्वपूर्ण भाग अदा कर सकती हैं। क्योंकि यदि विज्ञान और टैक्नोलोजी सही और उचित ढंग से पढ़ाए जाएं तो उनसे भी उतना ही मानवतावादी प्रभाव पड़ सकता है जितना अन्य विषयों से होता है। इसलिए विज्ञान कांग्रेस को विज्ञान की बुनियादी आवश्यकताओं और अपेक्षाओं के बारे में जनता में जन-जागरण फैलाने की ओर गंभीरता पूर्वक ध्यान देना चाहिए क्योंकि अन्ततोगत्वा यदि जनता विज्ञान में रुचि लेती है तभी विज्ञान को सहारा मिलता है।

आधुनिक जगत में सैद्धान्तिक विज्ञान के क्षेत्र में विश्वविद्यालय सबसे बड़ा योगदान कर सकते हैं। इस

बात ने विश्वविद्यालयों को राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था में एक नया महत्व और एक नया स्थान प्राप्त करा दिया है और वे इसमें महत्वपूर्ण भाग अदा कर सकते हैं। सचाई तो यह है कि विश्वविद्यालयों में विज्ञान और टैक्नोलोजी देश की वैज्ञानिक और टैक्नीकल प्रगति का एक उचित पैमाना बन सकता है। एक विकासमान देश में विश्वविद्यालयों को शक्तिशाली बनाना सभी दूसरी बातों से अधिक बुनियादी बात है।

एक शताब्दी से भी अधिक के अनुभव को महान जर्मन विश्वविद्यालयों में शुरू हुआ था से पता चलता है कि अध्यापन और अनुसंधान साथ-साथ ही सबसे अधिक अच्छी तरह पनपते हैं। बिलगता में दोनों ही कुम्हला जाते हैं। दोनों को सबसे अच्छे गुण ऐसे ही वातावरण से प्राप्त होते हैं जहाँ पर अध्ययन और अनुसंधान दोनों साथ-साथ चलाये जाते हैं। अध्यापन और अनुसंधान शिक्षा और नौजवान को इस युगल जोड़ी में ही विश्वविद्यालयों की असली शक्ति निहित है।

इंगलैण्ड में विश्वविद्यालयों का 50 प्रतिशत व्यय और यहाँ के अध्यापक वर्ग का आधा समय अनुसंधान पर खर्च होता है। अमरीका की सरकार ने 1962 में लगभग 500 करोड़ रुपये विश्वविद्यालयों में अनुसंधान और विकास पर खर्च किए। यह धन 1940 में इसी मद में

हुए धन की अपेक्षा 70 गुना अधिक है। अमेरिका के राष्ट्रपति की वैज्ञानिक परामर्शदाता समिति द्वारा प्रकाशित "विज्ञान और टैक्नोलोजी" के लिए मनुष्य शक्ति की आवश्यकताओं के बारे में अभी हाल की रिपोर्ट में बड़े जोरदार शब्दों में कहा गया है कि "राष्ट्र की अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमें 1970 तक प्रथम श्रेणी के इंजीनियरों, गणितज्ञों, भौतिक वैज्ञानिकों और डाक्टरों की संख्या दुगनी करनी होगी जिसके लिए प्रतिवर्ष 4 हजार करोड़ रुपये खर्च करना होगा। (इनमें से 1300 करोड़ रुपया अनुसन्धान पर खर्च होगा) आज केवल 1500 करोड़ रुपये ही उपर्युक्त मद में खर्च हो रहा है। अमरीका में 1961 में विज्ञान और टैक्नोलोजी की स्नातक कक्षाओं में 6.45 लाख विद्यार्थी लिये गये थे और उस वर्ष इनको पढ़ाने के लिए लगभग एक हजार अध्यापक थे।

100 वर्ष पहले एक जमाना था जब एक प्रतिभावान व्यक्ति विज्ञान के सम्पूर्ण भण्डार का ज्ञान प्राप्त कर लेता था पर अब ऐसा नहीं है। विज्ञान और टैक्नोलोजी आज 100-150 विषयों में विभाजित हो गये हैं। यद्यपि यह विभाजन आमतौर पर कृत्रिम होता है फिर भी किसी एक व्यक्ति के लिए इनमें से एक विषय पर पूर्ण रूप से विज्ञता प्राप्त करना मुश्किल हो जाता है। इस तरह विज्ञान के व्यापीकरण को यदि हम प्रतिगामी नहीं बनाना है तो उपरोक्त विषयों की

सूचनायें एक दूसरे को पहुँचानी होंगी। तभी यह पृथक के रूप में काम दे सकता है। विभिन्न विषयों की सीमाओं को बराबर बदलते रहने की जरूरत है। क्योंकि विज्ञान का वर्गीकरण बनावटी है। असल में तो विज्ञान एकता का सूचक है।

पाठ्यक्रम में क्रांति

उदाहरण के लिए भौतिकी को ही लें। विद्यार्थी और अध्यापक किस प्रकार दिन प्रति-दिन अत्यधिक गति से बढ़ते हुए विषय के साथ कदम से कदम मिला कर चल सकते हैं? इस क्षेत्र में आज बहुत कुछ जानने को है और जैसे जैसे ज्ञान निकलते जाते हैं और नया सीखने को बढ़ता जाता है। इसलिए यह जाहिर है कि यदि हम को इस बढ़ते हुए ज्ञान के साथ कदम से कदम मिला कर चलना है तो हमें पाठ्यक्रम के अध्ययन और अध्यापन के तरीकों में क्रांति लानी होगी। कोई भी ऐसी चीज जो अधिक महत्वपूर्ण न हो या जिसका उपयोग सीमित हो जिससे विचार उभार न बनते हों या जो बुद्धि का विकसित न करती हो ऐसी पाठ्य सामग्री को हाई स्कूल या डिग्री कक्षाओं में कोई स्थान नहीं होना चाहिए। साथ ही भौतिकी को समझने के लिए हमें गणित को बुनियादी विषय रूप में और अधिक सीखने पर जोर देना चाहिए।

पाठ्यक्रम में इस अत्यधिक आवश्यक क्रांति को लाने के लिए बिना इकट्ठा हुए के काम नहीं चलेगा। इसके लिये विश्वविद्यालयों और हाई स्कूलों के अध्यापकों के सम्मिलित प्रयत्नों की जरूरत पड़ेगी। इसके लिए स्कूल और विश्वविद्यालयों में परस्पर आदान-प्रदान के रास्ते निकालने होंगे। अमरीका के कुछ चोटी के भौतिक वैज्ञानिकों और विश्वविद्यालय व हाई स्कूलों के अध्यापकों के सम्मिलित प्रयत्न द्वारा भौतिकी की पाठ्यपुस्तक तैयार करना इस प्रकार के सहयोग का एक ज्वलंत उदाहरण है। यह पुस्तक अमरिका के सैकड़ों स्कूलों में सफलतापूर्वक पढ़ाई जा चुकी है। इस पुस्तक की पाठ्य सामग्री से भी अधिक महत्वपूर्ण इसकी नवीनता और इसकी साहसिक पहुंच है। हमारे देश में भी सैकेंडरी स्कूलों के लिए वैज्ञानिक विषयों में इसी प्रकार की पाठ्य पुस्तकों को तैयार करने का काम हो रहा है। यदि ऊंचे किस्म की पाठ्य पुस्तकें और उनसे सम्बन्धित प्रकाशनों के प्रकाशन कार्यक्रम को सफलता मिलनी है तो यह जरूरी है कि इस प्रकार की पुस्तकों के लिख जाने को भी विद्वत समितियों द्वारा उतनी ही मान्यता प्रदान की जानी चाहिए जितनी ऊंचे किस्म के अनुसंधान कार्य को मिलती है। इस बात पर कैमर्स की रिपार्ट 'विज्ञान सरकार और सूचना' में भी जोर दिया गया है।

जिज्ञासा और वैज्ञानिक परम्परा का वातावरण

वैज्ञानिक और टैक्नीकल साहित्य आमतौर पर बहुत महँगा होता है। हमारे विद्यार्थी पुस्तकें आसानी से खरीद सकें इसके लिये यह आवश्यक है कि उनके सस्ते संस्करण और बिना गत्ते की जिल्दें निकाली जायें। विज्ञान की प्रगति के लिए जिज्ञासा का मुक्त वातावरण आलोचना और विचारों का निडरता के साथ जाहिर करना जरूरी है। ये सारी बातें आसानी से संगठित की जा सकती हैं और इनको बढ़ाया जा सकता है, अगर प्रतिष्ठाशाली विश्वविद्यालय और उनके साथ स्नातकोत्तर अध्ययन और अनुसंधान की उच्च संस्थायें भी सम्बद्ध हों। यह जरूरी है कि देश के ऊँचे वैज्ञानिक विश्वविद्यालयों में रहें ताकि वे नौजवानों को प्रेरणा दे सकें। इसके साथ ही इस बात की भी पूरी कोशिश होनी चाहिए कि प्रशासन में कम और वैज्ञानिक काम में अधिक लोग लगें साथ ही उन छोटी और मामूली प्रयोगशालाओं का जो ऊँचे काम कर रही हैं अनुपात बढ़े तथा उन बड़ी प्रयोगशालाओं का अनुपात जो छोटे काम कर रही हैं, घटे।

एक विकासमान देश में वैज्ञानिक परम्परायें कायम करने के लिए निश्चित रूप से प्रयत्न की आवश्यकता होती है और इसमें कुछ समय भी लगता है। माइकेल पोलियानी के

अनुसार उन लोगों ने जिन्होंने संसार के अनेक ऐसे भागों को देखा है जहाँ विज्ञान की अभी शुरुआत हो रही है वे जानते हैं कि वहाँ पर विज्ञान के विद्यार्थियों का कितना काम करना पड़ रहा है। ऐसे स्थानों में अनुसंधान का काम प्रेरणा के अभाव में पड़ा रहता है जबकि दूसरे स्थानों में यह बिना किसी निश्चित निदेशात्मक प्रभाव के बिखरा पड़ा रहता है—जैसे तथा कथित प्रसिद्ध 'मशरूम' फफूंद अपने आप इधर उधर फैल जाती है—जबकि कहने योग्य अनुसंधान कुछ भी नहीं होता और कहीं कहीं अनुसंधान होता ही नहीं केवल उसकी ऐसी ही बघारी जाती है।

आमतौर पर यह सच है कि किसी व्यक्ति की सृजनात्मक शक्ति अन्य जगहों की अपेक्षा विश्वविद्यालय के वातावरण में अधिक देर तक काम कर सकती है क्योंकि वहाँ उसे निरन्तर युवकों की चुनौती का सामना करना पड़ता है। 'साइंस' नामक पत्र के हाल के ही एक सम्पादकीय में कहा गया है कि किसी वैज्ञानिक का जो पहले ही काफी प्रसिद्ध हो चुका हो सभी लोगों का रास्ता प्रायः बहुत ज्यादा पैसे बहुत ज्यादा मानोपाधान और पद के लिए बहुत ज्यादा लालसा और अपनी सुरक्षा के लिए बेतहाशा फिक्र इन सब चीजों के कारण रुक जाता है। इन सब बातों का खतरा विश्वविद्यालय में अपेक्षा कुछ कम होता है। कहते हैं कि विज्ञान की प्रगति को मर

करने का सबसे आसान नुस्खा यह है कि बहुत सी वैज्ञानिक समितियाँ बना दी जायँ उनको भारी सम्मान दिया जाय और उनमें देश के ऊँचे वैज्ञानिक मनोनीत किये जायँ।

विज्ञान में सहयोगी भावना

धीरे धीरे विज्ञान सम्बन्धी काम अब ऐसा रूप ले रहा है जिसमें मिल-जुल कर प्रयत्न करने की और अधिक आवश्यकता होती है। वास्तव में विज्ञान में तीव्र प्रगति के लिए यह आवश्यक भी है कि समन्वित सहयोग मिले। आये दिन विज्ञान की समस्यायें अधिक से अधिक पेचीदा हो रही हैं और उनमें ज्यादा उपकरणों की जरूरत होती जाती है। विज्ञान में मिले-जुले काम की महत्ता द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान अनुभव की गई थी और इसके फलस्वरूप प्रगति भी अच्छी हुई। सबसे अधिक सफल प्रयोगशालायें बड़े-बड़े परिवारों की तरह काम करती हैं जहाँ उन प्रयोगशालाओं के सदस्य अपने काम से मिलने वाली खुशी आशा और निराशा सबको साथ-साथ अनुभव करते हैं।

इस प्रकार से मिल-जुल काम की भावना को बढ़ावा देने की दिशा में विश्वविद्यालयों का एक विशेष महत्व है। संयुक्त राज्य अमेरिका के विज्ञान की राष्ट्रीय अकादमी के अध्यक्ष फैडरिक सीट्ज ने हाल में ही अपने

अनुसार उन लोगों से जिन्होंने संसार के अनेक ऐसे भागों को देखा है जहाँ विज्ञान की अभी शुरुआत हो रही है वे जानते हैं कि वहाँ पर विज्ञान के निर्माताओं को कितना काम करना पड़ रहा है। ऐसे स्थानों में अनुसंधान का काम प्रेरणा के अभाव में पड़ा रहता है जबकि दूसरे स्थानों में यह बिना किसी निश्चित निदेशात्मक प्रभाव के बिखरा पड़ा रहता है—जैसे तथा कथित प्रसिद्ध 'मशरूम' फफूंद अपने आप इधर उधर फैल जाती है—जबकि इससे योग्य अनुसंधान कुछ भी नहीं होता और कहीं कहीं अनुसंधान होता ही नहीं केवल उसकी चर्चा ही बघारी जाती है।

आमतौर पर यह सच है कि किसी व्यक्ति की सृजनात्मक शक्ति अन्य जगहों की अपेक्षा विश्वविद्यालय के वातावरण में अधिक देर तक काम कर सकती है क्योंकि वहाँ उसे निरन्तर युवकों की चुनौती का सामना करना पड़ता है। 'साइंस' नामक पत्र के हाल के ही एक सम्पादकीय में कहा गया है कि किसी वैज्ञानिक की जो पहले ही काफी प्रसिद्ध हो चुका हो सभी मार्गों का रास्ता प्रायः बहुत ज्यादा जैसे बहुत ज्यादा मानसम्मान और पद के लिए बहुत ज्यादा मामला और अपनी सुरक्षा के लिए बेतहाशा फिक्र इन सब चीजों के कारण रुक जाता है। इन सब बातों का खतरा विश्वविद्यालय में अपेक्षाकृत कम होता है। सरल है कि विज्ञान की प्रगति को मंद

अनुसार उन लोगों से जिन्होंने संसार के अनेक ऐसे भागों को देखा है जहाँ विज्ञान की अभी शुरुआत हो रही है वे जानते हैं कि वहाँ पर विज्ञान के निर्माताओं को कितना काम करना पड़ रहा है। ऐसे स्थानों में अनुसंधान का काम प्रेरणा के अभाव में पड़ा रहता है जबकि दूसरे स्थानों में यह बिना किसी निश्चित निषेधात्मक प्रभाव के बिखरा पड़ा रहता है—जैसे तथा कथित प्रसिद्ध 'मदरूम' कुकुरमुत्ता आप इधर उधर फैल जाती है—जबकि कहने योग्य अनुसंधान कुछ भी नहीं होता और कहीं कहीं अनुसंधान होता ही नहीं केवल उसकी शेखी ही बघारी जाती है।

आमतौर पर यह सच है कि किसी व्यक्ति की सृजनात्मक शक्ति अन्य जगहों की अपेक्षा विश्वविद्यालय के वातावरण में अधिक देर तक काम कर सकती है क्योंकि वहाँ उसे निरन्तर युवकों की चुनौती का सामना करना पड़ता है। 'साइंस' नामक पत्र के हाल के ही एक सम्पादकीय में कहा गया है कि किसी वैज्ञानिक को जो पहले ही काफ़ी प्रसिद्ध हो चुका हो नयी नायों का रास्ता प्रायः बहुत ज्यादा वेतन बहुत ज्यादा साजोसामान और बहुत ज्यादा सम्मान और अपनी सुरक्षा के पद के लिए बहुत ज्यादा ... के लिए बेनहाना ... इन सब चीजों के कारण एक जाना है। इन सब बातों का नतीजा विश्वविद्यालय में अपेक्षा कृत कम होता है। कहना है कि विज्ञान की प्रगति को मंद

करने का सबसे आसान नुस्खा यह है कि बहुत सी वैज्ञानिक
समितियाँ बना दी जायें उनको भारी सम्मान दिया जाय
और उनमें देश के ऊँचे वैज्ञानिक मनोनीत किये जायें।

विज्ञान में सहयोगी भावना

धीरे-धीरे विज्ञान सम्बन्धी काम अब ऐसा रूप ले रहा है
जिसमें मिल जुल कर प्रयत्न करने की और अधिक
आवश्यकता होती है। वास्तव में विज्ञान में तीव्र प्रगति
के लिए यह आवश्यक भी है कि समन्वित सहयोग मिले।
आये दिन विज्ञान की समस्यायें अधिक से अधिक पेचीदा
हो रही हैं और उनमें ज्यादा उपकरणों की जरूरत होती
जाती है। विज्ञान में मिले-जुले काम की महत्ता द्वितीय विश्व
युद्ध के दौरान अनुभव की गई थी और इसके फलस्वरूप
प्रगति भी अच्छी हुई। सबसे अधिक सफल प्रयोगशालायें
बड़े-बड़े परिवारों की तरह काम करती हैं जहाँ उन
प्रयोगशालाओं के सदस्य अपने काम में मिलने वाली
खुशी आशा और निराशा सबको साथ-साथ अनु
करते हैं।

इस प्रकार से मिले जुले काम की भावना को बढ़ाव
देने की दिशा में विश्वविद्यालयों का एक विशेष महत्
है। संयुक्त राज्य अमरिका के विज्ञान की राष्ट्रीय
अकादमी के अध्यक्ष फ्रेडरिक सीट्ज ने हाल में ही अपने

एक भाषण में कहा है "यहाँ इस बात पर जोर देने की आवश्यकता है कि विभाग में मिल-जुल कर काम करने की भावना दिन-ब-दिन जोर पकड़ती गई और पिछले ४० वर्षों के दौरान विश्वविद्यालयों के माध्यम से यह काम बहुत प्रभावशाली ढंग से किया गया है।

प्रसाधनों के बटवारे में सन्तुलन

यह जाहिर है कि अगर हम शिक्षा में अच्छे नतीजे प्राप्त करते हैं तो विज्ञान, इंजीनियरिंग, कृषि और दूसरे विषयों में अध्यापन के लिए प्रसाधनों का ठीक-ठीक बटवारा हो ताकि उनमें एक युक्तिसंगत सन्तुलन और परस्पर सहयोग की भावना बनी रहे। वास्तव में सम्पूर्ण शिक्षा के लिए प्रसाधनों का उपयुक्त बटवारा होना चाहिए। अगर किसी एक विषय पर ज्यादा जोर दिया जाये और दूसरे विषय की अपेक्षा उस पर ज्यादा खर्चा किया जाय तो शिक्षा की मशीन गड़बड़ा जायेगी और इसके फलस्वरूप प्रसाधनों की फिजूलखर्ची साबित होगी।

अगर विश्वविद्यालय के बाहर जाने अनुसंधान केन्द्र बहुत तेज रफ्तार से विकसित होंगे तो इसका परिणाम यह होगा कि विश्वविद्यालय के कुशल प्राध्यापक निकल जायेंगे। इस प्रकार विश्वविद्यालय सम्भवतः उस क्षेत्र से भी वंचित रहेंगे जो वस्तुतः में उनका हक

है। आखिर में विश्वविद्यालयों के कमजोर पड़ जाने पर अनुसंधान संस्थायें भी निश्चित रूप से कमजोर पड़ जायेंगी। इस विषय में हाल में ही निकली भौतिकी संस्था (यू० के०) की रिपोर्ट काफी दिलचस्प है। इस पर टिप्पणी करते हुए लंदन के पत्र 'इकोनोमिस्ट' ने 31 अगस्त 1963 के अंक में लिखा है

'ये दोनों संस्थाएँ इस बात से बहुत ज्यादा परेशान हैं कि अच्छे भौतिक शास्त्री अच्छे वेतन और अनुसंधान की सुविधाओं के लोभ में जो कि उन्हें दूसरी जगह नहीं मिल सकतीं सरकारी संस्थाओं में चले जाते हैं। परमाणु शक्ति संस्थान जितना वेतन वैज्ञानिकों को देता है उसका अन्य संस्थाओं द्वारा कम ही मिल पाता है। एक बार जब ये विश्वविद्यालयों को छोड़ कर बाहर चले जाते हैं तो वहाँ अध्यापन और विज्ञान के क्षेत्र में उनका स्थान खाली हो जाता है। इस प्रकार विश्वविद्यालयों के अध्यापन का स्तर खतरे में पड़ गया है क्योंकि अच्छे वैज्ञानिक तो बाहर चले जाते हैं और पढ़ाने के लिए तभी तक वे वहाँ रह सकते हैं जब तक कि उन्हें अनुसंधान की अच्छी सुविधायें प्राप्त न हों और विश्वविद्यालयों में इस प्रकार की सुविधायें प्रायः प्राप्त नहीं होतीं।

इस शिकायत के पीछे एक जबरदस्त सचाई है। नई सरकारी संस्थान विश्वविद्यालयों जैसे विशुद्ध रूप से

अनुसंधान करने वाली संस्थाएँ बन गई हैं। जैसे परमाणु शक्ति संस्थान का काम बहुत कुछ सैद्धान्तिक विज्ञान से सम्बन्धित है। इसी प्रकार वायु-संचार मन्त्रालय का मालवर्न में स्थित अनुसंधान केन्द्र भी है। अब इन संस्थाओं को उस उद्देश्य के लिये काम करने की ज़रूरत नहीं रही जिसके लिए उनको मूल रूप से स्थापित किया गया था। इस प्रकार विश्वविद्यालयों के प्राध्यापक वर्ग की सुरक्षित बौद्धिक संपत्ति को सरकारी संस्थान हथिया रहे हैं। लेकिन इसका क्या हल हो सकता है? क्या इन संस्थानों के सत्य-समान को यों ही छोड़ दिया जाय और शिक्षित वैज्ञानिकों का पूरा उपयोग न किया जाय? प्रश्न उठता है कि क्या विश्वविद्यालयों और सरकारी संस्थानों के बीच भी अनुसंधान कर्मचारियों का परस्पर अदल-बदल होता रहे? इस बारे में कई समितियों ने विचार किया लेकिन अभी तक किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंचा गया क्योंकि दोनों स्थानों के वेतन के बहुत बड़े अन्तर की समस्या तो बनी ही रह जाती है।

जब योग्य आदमियों की कमी हो जाती है तो बेहतर यह मालूम होता है कि कुछ आदमियों का दोनों ही कामों यानी अध्यापन और अनुसंधान में लगाया जाय। यदि विनियोग और प्रयत्न किसी निश्चित सीमा से आगे बढ़ जाते हैं तो एक प्रकार की न्यूनता-प्रक्रिया

पैदा हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप और अधिक योग्य व्यक्ति बराबर मिलते रहेंगे।

शिक्षा पर खर्च

यह एक रोचक तथ्य है कि विश्वविद्यालय में प्रत्येक विद्यार्थी की शिक्षा पर होने वाला खर्च जिसमें उसके खाने और रहने का खर्च शामिल नहीं है लगभग उतना ही है जितना उस देश में प्रति व्यक्ति की औसत आय है। इस तरह विश्वविद्यालय में पढ़ने वाले प्रत्येक छात्र का खर्च भारत में करीब 400 रुपया इंग्लैण्ड में करीब 600 पौंड और अमरीका में करीब 3000 डालर प्रतिवर्ष है। अमरीका में स्नातक स्तर की शिक्षा का विषयवार खर्च इस प्रकार है मानवशास्त्र (विज्ञानेतर) 3200 डालर शिक्षा 3300 डालर सामाजिक विज्ञान 3250 डालर जीव विज्ञान 33"4 डालर भौतिक विज्ञान और गणित शास्त्र 3380 डालर और इंजीनियरिंग 4020 डालर। (राष्ट्रपति की विज्ञान सलाहकार समिति की रिपोर्ट से उपर्युक्त आंकड़े उद्धृत किये गये हैं।) विश्वविद्यालय के प्राध्यापक का वेतन इंग्लैण्ड में आम आदमी की औसत आय का दुगना है जबकि भारत में यही प्रति व्यक्ति औसत आय का पन्द्रह गुना है।

उच्च शिक्षा और अनुसंधान केन्द्र

अनुसन्धान और स्नातकोत्तर (पोस्ट ग्रेजुएट) काम के स्तर पर विकासशील देशों में होने वाला खर्चा करीब करीब उतना ही होता है जितना कि अधिक उन्नत देशों में। विकासशील देशों के पास सीमित साधन हैं इसलिए उन्हें अपने उद्देश्य की पूर्ति करने के लिए अपने साधनों को एक साथ जुटाकर काम करना होगा। यदि विश्वविद्यालय परस्पर सहयोग करें तो यह सम्भव है कि कुछ ऊँचे दर्जे के केन्द्र खोले जा सकें। दूसरे शब्दों में हमारा उद्देश्य यह होना चाहिए कि हम सावधानी पूर्वक सोच विचार कर कुछ विषय छांट लें और कुछ विश्वविद्यालय छांट लें और उन्हीं के अनुरूप उच्च शिक्षा के केन्द्र खोलें। इन केन्द्रों से यह लाभ होगा कि दूसरे खोले जाने वाले केन्द्रों के लिए वहीं से सामग्री मिल सकेगी। विकासशील देशों के लिए यह जरूरी है कि वे शुरू-शुरू में इसके लिए जोरदार प्रयत्न करें। इसके अलावा यह भी जरूरी है कि विश्वविद्यालयों और राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं तथा अनुसन्धान केन्द्रों के बीच पूरा सहयोग हो। ताकि इन सब के सहयोग से और सभी प्राप्य प्रसाधनों से उच्च शिक्षा और अनुसन्धान के केन्द्र स्थापित किये जा सकें। और जैसा कि लार्ड हेलशम ने अपनी नयी पुस्तक 'साइंस

एण्ड पॉलिटिक्स' (विज्ञान और राजनीति) में कहा है कि सरकार और विश्वविद्यालयों के बीच एक स्वस्थ सम्बन्ध आमतौर पर सरकार और विज्ञान के परस्पर आदान प्रदान और समागम के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है।

इन बातों से जो परिणाम निकलते हैं वे साफ और सीधे हैं। लेकिन अक्सर जो चीजें साफ और सीधी नजर आती हैं वे करने में बहुत ही मुश्किल होती हैं। ये नतीजे नीचे दिये जा रहे हैं

1. विश्वविद्यालयों के सुधारने के लिए हर सम्भव प्रयत्न किया जाना चाहिए जैसे विद्यार्थियों और अध्यापकों के बीच का अनुपात बढ़ाया जाय, पुस्तकालय और प्रयोगशालाओं को खासतौर पर स्नातकोत्तर और अनुसन्धान स्तर के विद्यार्थियों के लिए अधिक सुविधाएँ दी जाएँ, प्रतिभावान् व्यक्तियों और सुविधाओं के उपयोग के लिए उपयुक्त योजना तैयार की जाय। आजकल तो हमारे देश में ये सुविधाएँ बहुत कम हैं। आगामी [illegible] वर्षों में विश्वविद्यालयों का आकार-प्रकार कम से कम दुगना तो कर ही देना चाहिए।

सबसे ज्यादा जरूरत तो स्नातकोत्तर छात्रों के लिए विद्यालय खोलने की है और इनका संगठन अच्छे रूप से किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं और दूसरी

संस्थानों के सभी प्राप्य प्रसाधनों का समन्वित प्रयोग किया जाना चाहिए।

2. विश्वविद्यालयों में अच्छे काम अच्छे अध्यापन और अच्छे अनुसन्धान की भरपूर प्रशंसा की जानी चाहिए और उन्हें प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। विज्ञान में जितना कोई ईमानदारी से जी तोड़ मेहनत करता है उसका सीधा सम्बन्ध उसी के अनुपात में मिलने वाले नतीजों से होता है।

3. विश्वविद्यालयों राष्ट्रीय अनुसन्धानशालाओं सरकारी वैज्ञानिक महकमों और उद्योगों के साथ परस्पर सम्पर्क बना रहना चाहिए। इस सम्पर्क के अन्तर्गत वैज्ञानिक कर्मचारियों की अदला-बदली भी शामिल है। जो कोई व्यक्ति वास्तव में योग्य हो और विश्वविद्यालय में काम करना चाहे उसे प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। क्यों कि आज हमें इस बात की इतनी जरूरत है कि सभी प्रसाधनों का भरपूर लाभ उठाया जाना चाहिए।

4. अच्छा वातावरण नेतृत्व और त्याग की भावना सामूहिक काम के लिये बहुत महत्वपूर्ण है और इनसे ही ऊँचे दर्जे का वैज्ञानिक काम होता है। योग्य और प्रतिभावान् व्यक्तियों को ऐसी सुविधाएँ दी जानी चाहिए ताकि वे अपना काम पूरी लगन के साथ छोटे-मोटे झगड़ों और परेशानियों में बिना पड़े कर सकें। इसलिए प्रशासनिक भार और

बेकार की औपचारिकताएँ कम से कम की जानी चाहिए।

5 हमारे साधन सीमित हैं इसलिए जरूरत इस बात की है कि हम सीमित साधनों से अधिकतम लाभ उठा सकें। यानी हम बजाय पैसा व्यय करने के दिमाग खर्च करके यह काम निकाल सकें।

संयुक्त राज्य अमरिका के राष्ट्रपति की विज्ञान सलाहकार समिति ने अपनी हाल ही की रिपोर्ट में (जिसे अणु ऊर्जा आयोग के वर्तमान अध्यक्ष प्रोफेसर जी टी सीबोर्ग की अध्यक्षता में तैयार किया गया है) कहा है 'बुनियादी अनुसन्धान और स्नातक शिक्षा को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। निश्चित रूप से संघीय सरकार इस काम की धुरी है। क्या अमेरिका में बुनियादी अनुसन्धान और स्नातक शिक्षा की मात्रा और किस्म काफी या नाकाफी होगी? —यह बात अमरीकी सरकार पर ही मुख्यरूप से निर्भर करती है। इसको अमरीकी सरकार टाल भी नहीं सकती। अमरीकी सरकार को इसके अनुकूल नीति अपनानी पड़ेगी और ऐसे साधन जुटाने पड़ेंगे ताकि विश्वविद्यालय फल-फूलें और अपना दायित्व सफलतापूर्वक निभा सकें और अगर सरकार ही ऐसा नहीं करेगी तो और कौन करेगा?

ये बड़े बुद्धिमानी भरे शब्द हैं और हम पर भी वैसे ही लागू होते हैं जैसे उन पर। यहां हम श्री नेहरू के

समय दोहराना चाहेंगे जो उन्होंने कुछ साल पहले एक विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में कहे थे क्योंकि विश्वविद्यालय की इससे ज्यादा उम्दा तस्वीर शायद ही खींची जा सकती हो।

"विश्वविद्यालय मानवता सहनशीलता युक्ति, सत्य की खोज विचारों की नवीनता का प्रतीक है। अगर विश्वविद्यालय अपने कर्तव्यों को ठीक तरह से निभायें तो सारे देश और जनता की भलाई होगी।"

विज्ञान ने मनुष्य के भौतिक वातावरण के बदलने में एक क्रांति पैदा कर दी है। इसके कारण आम आदमी को भी इतनी सुख सुविधायें प्राप्त हो गई हैं जितनी कि उसे पहले कभी प्राप्त नहीं हुई। लेकिन अभी यह बात संसार के सभी देशों के लिए लागू नहीं होती। आदि काल से ही ऋषि मुनि और महान व्यक्ति उपरोक्त संसार का सपना देखते आ रहे थे। लेकिन अब तक इस सपने को पूरा करने के आवश्यक साधन जो निश्चित रूप से ही विज्ञान और टैक्नोलोजी पर आधारित हैं प्राप्त नहीं थे। प्राचीन सभ्यताओं और संस्कृतियों में तथा उसके बाद भी सभ्यताओं में गुलामों को रखकर काम कराना उनका एक अभिन्न अंग था। अरस्तू ने कहा था "गुलाम प्रथा तभी खत्म हो सकती है जब परिश्रम करने के लिए मशीनें ही तैयार हो जायें। और यही वास्तव में हुआ भी लेकिन इसको करने में दो

हजार साल से भी अधिक लग गये। जैसे आज मशीनों ने मनुष्य को कड़े परिश्रम से मुक्ति दिला दी है उसी तरह स्वत-चालित यंत्रों और कृत्रिम मस्तिष्क रूपी मशीनों के विकसित हो जाने पर निकट भविष्य में मनुष्य को अरुचिकर बोझीले लिखने पढ़ने वाले और मानसिक कामों से छुट्टी मिल जायेगी। अब तक आमतौर पर वातावरण ने ही जीवन के विकास को प्रभावित किया है। लेकिन अब मनुष्य अपने मस्तिष्क की अद्भुत प्रतिभा और विज्ञान की खोजों द्वारा प्राप्त शक्ति को अपने भाग्य निर्माण के रखने में जान बूझ कर व्यवहार करने लगेगा। ऐसा लगता है भौतिक शक्ति को पाना ही अब तक मनुष्य का उद्देश्य रहा है। लेकिन अब ऐसा लगता है कि जीवन को सार्थक बनाने के लिए ऊंचे मूल्यों को खोजना मनुष्य अपना उद्देश्य बना लेगा। इसी को विनोबा भावे विज्ञान और आध्यात्म का युग कहते हैं। मनुष्य अपने इस उद्देश्य में सफल हो जायेगा यदि वह परमाणु की विभीषिका से बच सके। अब यह भयानक सत्य छिपा नहीं रहा है कि मनुष्य आज संकट की ऐसी कगार पर खड़ा है जो पहले कभी पैदा नहीं हुई थी। यह संकट परमाणु शक्ति का जान बूझ कर या अनजान इस्तेमाल है। इतिहास में मनुष्य द्वारा जितने भी युद्ध लड़े गये हैं उनमें मुक्त हुई विस्फोटक शक्ति किसी रासायनिक विस्फोटक जैसे टी-एन-टी की लगभग 50 लाख टन (या 5 मैगाटन)

के तुल्यांक है। द्वितीय युद्ध के बाद के शान्ति काल में परमाणु विस्फोट परीक्षणों से जितनी शक्ति मुक्त हुई है वह 5 हजार लाख टन (500 मैगाटन) टी-एन-टी के बराबर है। यदि संसार में पूरे पैमाने पर परमाणु युद्ध छिड़ जाये तो यह शक्ति लाखों मैगाटन हो जायगी और इस युद्ध के छिड़ जाने के कुछ घण्टे और दिन के अन्दर ही करोड़ों अरबों लोगों की जान जायगी। पाँच पाँच सौ और पचास पचास हजार मैगाटन ऐसी संख्याएँ हैं जिनको सुनने से ही हम डर सकते हैं। आज परमाणु या अहिंसा या दूसरे शब्दों में मनुष्य द्वारा अर्जित अन्तरिक्ष ज्ञान और उसके मस्तिष्क में ज्ञान के भरे बीच सन्तुलन नहीं रहा है। इस असन्तुलन को दूर करना ही मनुष्य मात्र का कर्तव्य है। मनुष्य आज एक ऐसी कगार पर खड़ा है कि चाहे तो बीच गड्ढे में गिरकर अपने का महान क्षति पहुँचा सकता है और चाहे तो मानवता के उच्च शिखर पर पहुँच सकता है।



विज्ञान और विश्वविद्यालय ... विज्ञान ... के ... अधिवेशन (अक्टूबर 1963) के अध्यक्षीय भाषण का रूपान्तर है।

2

प्राचीन शिक्षा और विज्ञान

भारत में प्राचीन काल से ही उच्च शिक्षा की एक शानदार परम्परा रही है। हमारे देश के तक्षशिला और नालंदा विश्वविद्यालय जगत विख्यात थे। तक्षशिला विश्वविद्यालय 700 ईसा पूर्व से लेकर छठी शताब्दी तक बराबर उन्नति करता रहा किन्तु इसके बाद हूणों के हमले के कारण यह नष्ट हो गया।

शिक्षा की प्राचीन परम्परा

नालंदा विश्वविद्यालय की स्थापना गुप्तकाल में हुई थी और इसके भग्नावशेष आज भी पटना जिले के राजगिरी स्थान पर मौजूद हैं। इस विश्वविद्यालय के द्वार पर लिखा हुआ था "क्रोध को क्षमा से दबाओ बदी को उपकार से मारो और असत्य को सत्य से जीतो।" सातवीं शताब्दी में ह्वेनसांग नाम का प्रसिद्ध चीनी यात्री भारत में आया था और उसने भी अपना काफी समय नालंदा विश्वविद्यालय में बिताया था। नालंदा विश्वविद्यालय में दाखिल होने के लिए एक बड़ा भारी प्रवेश द्वार बना हुआ

था जहाँ पर द्वार-पंडित बैठता था। यह द्वार पंडित ही विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने के इच्छुक नये छात्रों की परीक्षा लिया करता था। इसके लिए यह द्वार-पंडित वेद वेदांत और सांख्य से सम्बन्धित कुछ जटिल और कठिन प्रश्न पूछता था। जो प्रवेशार्थी इन प्रश्नों का उत्तर सफलतापूर्वक देते थे उनके लिए नालंदा विश्वविद्यालय का प्रवेश द्वार खुल जाता था। किन्तु जो इन सवालों का जवाब नहीं दे पाते थे ऐसे असफल छात्रों को निराश लौटना पड़ता था। जब यह विश्वविद्यालय अपनी प्रगति की चरम सीमा पर था उस समय इसमें लगभग 10 हजार विद्यार्थी पढ़ते थे। इनके आवास की पूरी व्यवस्था विश्वविद्यालय में थी। उस जमाने में यहाँ पर लगभग डेढ़ हजार शिक्षक थे। इसके बारे में यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि उस काल में भी नालन्दा विश्वविद्यालय में शिक्षकों और विद्यार्थियों का अनुपात 1 और 7 का था। आजकल के आधुनिक देशों के अच्छे विश्वविद्यालयों में भी यही अनुपात रखा जाता है। हमारे देश में आज कल शिक्षक और विद्यार्थियों का अनुपात लगभग 1 और 17 है। नालंदा विश्वविद्यालय के विद्यार्थी अपने शिक्षकों का पूरा आदर और सम्मान करते थे और साथ ही वे उनकी सेवा भी करते थे। नालंदा विश्वविद्यालय लगभग 1200 ई० तक कायम रहा।

एक बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि जब यूनान और रोम के विश्वविद्यालय अवनति को प्राप्त हुए तो नालंदा विश्वविद्यालय उच्च शिखर पर था और जब नालंदा के बुरे दिन आये तो यूरोप में आधुनिक विश्वविद्यालयों का श्रीगणेश हुआ। सबसे पहला विश्वविद्यालय इटली में कायम हुआ। इसके बाद पेरिस और आक्सफोर्ड में आधुनिक विश्वविद्यालय कायम हुए। इटली के बोलना विश्वविद्यालय में प्रसिद्ध ज्योतिर्विद कापर्निकस थे जिन्होंने प्रमाण दिया कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है।

नालंदा विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों द्वारा शिक्षकों के आदर और सम्मान की परम्पराओं के विपरीतटट भी के बोलना विश्वविद्यालय का कुछ दूसरा ही हाल था। इस विश्वविद्यालय का प्रबन्ध विद्यार्थी ही करते थे। वे ही अध्यापकों की भर्ती और नियुक्ति करते थे। जब अध्यापक कक्षाओं में अनुपस्थित होते थे तो वे उन पर जुर्माना भी करते थे। यदि किसी अध्यापक का एक दिन की छुट्टी लेनी होती थी तो भी इसकी अनुमति उनको विद्यार्थियों से ही लेनी पड़ती थी। (इसका विशेष विवरण 'विज्ञान और इतिहास' लेख में दिया गया है।)

इस मामूली शुरुआत से विश्वविद्यालयों का आधुनिक रूप मनुष्य के इतिहास में इस बात का अच्छा मनन है

कि यदि साधना बनी रहे तो एक छोटी सी धारा भी कालान्तर में एक विशाल नदी का रूप धारण कर लेती है।

उच्च शिक्षा जरूरी

आज के युग में भी देश के विकास और उन्नति के लिए शिक्षा और खासतौर पर उच्च शिक्षा बहुत आवश्यक है। इस परमाणु युग में यों कहना चाहिए कि उच्च शिक्षा जितनी महत्वपूर्ण और उपयोगी शायद ही कोई दूसरी चीज हो। क्योंकि चाहे देश की आर्थिक उन्नति की बात हो चाहे सामाजिक विकास का सवाल हो चाहे हमारी राष्ट्रीय सुरक्षा का प्रश्न हो—इन सभी क्षेत्रों में विकास और प्रगति के लिये उच्च शिक्षा का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। जब हम शिक्षा के बारे में विचार करते हैं तो यह बहुत आवश्यक है कि हम उसके गुणात्मक पक्ष (क्वालिटी) पर पूरा ध्यान दें। अगर शिक्षा उच्चकोटि की नहीं है तो वह एक सीमा तक निस्सार ही है। उच्चकोटि की शिक्षा के लिए यह भी जरूरी है कि अध्ययन और अनुसंधान में समन्वय हो। वे प्रतिस्पर्धी न होकर एक दूसरे के पूरक हों। आज और विशेषकर विज्ञान आज असाधारण गति से आगे बढ़ रहा है। इस जमाने में विज्ञान और टेक्नालोजी का वेग इतना तेज है

कि आज वैज्ञानिक ज्ञान लगभग हर 10-15 साल बाद दुगना हो जाता है। इसका मतलब यह है कि चाहे हम वैज्ञानिकों की संख्या की बात करें चाहे वैज्ञानिक साहित्य और पत्र-पत्रिकाओं की बात करें चाहे इंजीनियरिंग सामग्री के उत्पादन की चर्चा करें या हवाई जहाजों द्वारा प्राप्त की गई रफ्तार की बात करें—इन सभी चीजों पर, जो विज्ञान और टेक्नालोजी से सम्बन्धित हैं इस दुगन अवधि की बात लागू होती है। इस से यह जाहिर है कि यदि हमें विज्ञान और टेक्नालोजी से भरपूर आज के संसार के साथ कदम से कदम मिला कर चलना है तो विश्वविद्यालयों में शिक्षा पर पहले से भी बहुत अधिक बल दिया जाना चाहिए।

ज्ञान के परम्परागत केन्द्र

आजकल के जमाने में विश्वविद्यालयों के अलावा शायद ही कोई दूसरे ऐसे स्थान हों जहां पर ज्ञान व विकास और उसके सृजन की सम्भावना मौजूद हो। पहले जमाने में मन्दिर, मठ या अन्य धार्मिक संस्थायें आमतौर पर ज्ञान के केन्द्र होते थे। यहां पर न केवल पठन-पाठन का काम चलता था बल्कि ज्ञान-विज्ञान और दर्शन से सम्बन्धित गंभीर चर्चाएँ भी होती थीं। इस तरह ज्ञान के अर्जन-सृजन में इन संस्थाओं का बड़ा योगदान

था। ज्ञान का अर्जन करना उसका विकास करने और उसे आगे बढ़ाने आदि की जिम्मेदारी अब विश्वविद्यालयों पर ही आ गई है। इसके लिए यह जरूरी है कि विश्वविद्यालयों में ऐसे विद्यार्थी आयें जो पूरी लगन के साथ एकाग्रचित्त होकर अध्ययन कर सकें उनमें उच्च कोटि के शिक्षक होने चाहिए और पाठ्य-पुस्तकें भी ऊँची किस्म की होनी चाहिए। शिक्षा में सफलता पाने के लिए ज्ञान और चरित्र निर्माण दोनों जरूरी हैं। जहाँ चरित्र निर्माण के ऊपर पूरा ध्यान नहीं दिया जाता वहाँ ज्ञान भी अधूरा रह जाता है और छात्रों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का पूरा विकास नहीं हो पाता।

विज्ञान का भयंकर रूप

विज्ञान की प्रगति का ध्यान आते ही उसका भयंकर रूप भी हमारे सामने आ खड़ा होता है। जैसा कि प्रो ला-ग्रोस क्लार्क (Le Gros Clark) ने दो वर्ष पहले ब्रिटिश एसोसिएशन के अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा है

"For let us not deceive ourselves, the frightening question is now beginning to present itself whether the civilisation which mankind has slowly and laboriously built up over a period of many thousand of years can avoid disastrous dissolution as the result of uncontro-

liable (or at any rate uncontrolled) struggles for political power or economic superiority and, indeed, whether the human species can avoid at least partial extinction by the misapplication of its own ingenuity."

भविष्य की इस खतरनाक तस्वीर को खत्म करने के के लिए हमें सहयोग और कर्तव्य की उन भावनाओं पर आचरण करना होगा जो ऊँचे आदर्शों और लक्ष्यों को पाने के लिए जरूरी होती हैं।

विश्वविद्यालय इन महान आदर्शों को किस सीमा तक प्राप्त कर सकते हैं, यह इस बात पर निर्भर करता है कि इन संस्थाओं में अपने ऊँचे आदर्शों के अनुरूप विचारों को बिना डर के विवेक की तुला पर तौलने और वाद को साहस के साथ समाधान कराने की कितनी आजादी है, यहाँ पर ज्ञान विवेक और विनय किस हद तक साथ-साथ चलते हैं और मिले-जुले रूप में उनका कितना विकास हो पाता है तथा साथ ही यहाँ पर ज्ञान निष्ठा और चरित्र को बनाने पर किस हद तक बल दिया जाता है उनका कितना सम्मान किया जाता है और कहाँ तक रोजाना के जीवन को इनके अनुसार ढाला जाता है।

3

विज्ञान और इतिहास

विज्ञान का व्यापक रूप से विकास ऐतिहासिक दृष्टि से आज के युग की सबसे बड़ी विशेषता बन गया है। पिछले 300 वर्षों में विज्ञान और टेक्नोलाजी की नयी खोजों और ईजादों ने इतिहास को बहुत ज्यादा प्रभावित किया है और इसके कारण आज हम एक ऐसे मोड़ पर पहुंच गये हैं जहां आधुनिक विज्ञान भविष्य के आर्थिक और राजनैतिक इतिहास की दिशा को निश्चित करने लगा है। आज तो लगभग सभी लोग ऊपर की बात से सहमत होंगे। लेकिन आज से 300 साल पहले औरों की तो बात ही क्या विज्ञान के बड़े-बड़े विद्वान भी उपरोक्त बातें करने का साहस नहीं करते थे। इतिहास पर विज्ञान का इतना सीधा और इतना अधिक प्रभाव पड़ा है और आये दिन की नयी-नयी खोजों के कारण आज तो यह बताना भी कठिन हो गया है कि भावी इतिहास की क्या दिशा होगी। न तो इस बारे में कोई भविष्यवाणी ही कर सकता है और न निश्चित रूप से कुछ कहा ही जा सकता है। आधुनिक विज्ञान की मौलिक

खोजों में सम्भावना का ऐसा अंश निहित है जो भावी घटनाओं के मामूली सम्भावित अंश से कोई सम्बन्ध नहीं रखता क्योंकि विज्ञान में सैद्धान्तिक खोजों के बारे में बिल्कुल निश्चित रूप से कुछ भी कहना सम्भव नहीं है। इतिहास में ऊपर जो अनिश्चितता की बात कही गयी है उसका सम्बन्ध ऐतिहासिक घटनाओं की अनिश्चितताओं के पहलू से नहीं है। ऐतिहासिक घटनाएँ जहाँ एक ओर मनुष्य की स्वतन्त्र वृत्ति और सृजनात्मकता से सम्बन्धित होती हैं वहाँ दूसरी ओर इसके मुकाबले आवश्यकताओं के कारण अनिवार्यता और नियमन का असर भी उन पर पड़ता है। सवाल उठता है कि क्या आदमी का इतिहास की गतिविधियों पर सीधा नियंत्रण है? या इतिहास की धारा उसे स्वयं ही बहाते हुए तिनके के समान एक पूर्व निर्धारित मार्ग पर ले जाती है? यह एक ऐसा सवाल है जिसका अभी तक जवाब नहीं दिया जा सका है। और यह सवाल उचित है, या नहीं इसके बारे में भी हम निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकते।

इतिहासकार और भौतिक शास्त्री

इतिहासकार और मानवतावादी बहुत पहले से ही ज्ञान मीमांसा की कुछ ऐसी मूलभूत बातों का उल्लेख करते रहे हैं जिनके बारे में आज के भौतिक शास्त्रियों

को परीक्षणों से प्राप्त परमाणु-अभ्यन्तरों के विचित्र व्यवहार के कारण सोचने के लिये मजबूर होना पड़ा है। यह एक मानी हुई बात है कि जब हम किसी प्राचीन सभ्यता या समाज के बारे में विचार करें तो हमें इसमें बहुत सावधानी बरतनी चाहिए। क्योंकि अक्सर ऐसा होता है कि हम उस समाज या सभ्यता की चर्चा करते समय तत्कालीन विचारों में बह जाते हैं और वे विचार हमें प्रभावित भी करते हैं। उदाहरण के लिये हो सकता है कि इन प्रभावित करने वाली बातों में देश राष्ट्र प्रजातन्त्र आदि की भावना हो। पर ये विचार तो आधुनिक हैं। इन विचारों की पृष्ठभूमि में प्राचीन सभ्यता और संस्कृति की बात सोचना युक्ति सम्मत नहीं है फिर भले ही ऊपरी तौर पर इन बातों में और प्राचीन सभ्यता और संस्कृति में जिसका हम अध्ययन कर रहे हैं कुछ समानता हो।

यही अनुभव आज परमाणु प्रक्रिया के अध्ययन के बारे में लागू किया जा सकता है। उदाहरण के लिए स्थिति और वेग जैसे साधारण सिद्धान्त भी आज की आणविक व्यवस्था में इलेक्ट्रोन के बारे में ज्यों के त्यों लागू नहीं किये जा सकते जब तक कि हम कुछ विशेष सीमाओं को मान कर उनकी परिभाषाओं को सीमित न कर दें। परमाणु भौतिकी की इस नयी स्थिति के बारे में नील बोहर ने अपने 'सहपूरक सिद्धान्त' (Principle of

Complementarity) में इसका काफी स्पष्टीकरण किया है। ('मानव और विज्ञान' खण्ड में इसकी विशद चर्चा की गई है)। इस सिद्धान्त में दृष्टिकोण और काम प्रणाली के विज्ञान में कुछ ऐसी बातें हैं जो इतिहासकार और पुरातत्ववेत्ताओं के लिए काफी उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं।

विज्ञान का इतिहास मानवतावादी

आज के युग में विज्ञान और टैक्नालोजी के इतिहास का गंभीर अध्ययन बहुत जरूरी है। बड़े-बड़े आविष्कारों और खोज-बीनों का सिलसिलेवार वर्णन भी आवश्यक है परन्तु इस सिलसिलेवार वर्णन को इतिहास नहीं कहा जा सकता। वास्तव में विज्ञान के विकास और वृद्धि का इतिहास सामाजिक इतिहास का ही एक अंग है। दूसरी बात यह है कि इस विषय को हम छोटे-छोटे इतिहासों में जैसे भौतिकी रसायन शास्त्र आदि के इतिहासों में नहीं बांट सकते क्योंकि आखिर विज्ञान का इतिहास है क्या? यही न कि प्रगति के साथ-साथ प्राकृतिक विज्ञान इस प्रकार की छोटी-छोटी शाखाओं में बटता गया और यह बटवारा ही विज्ञान के इतिहास का एक मौलिक भाग है। इस सम्पूर्ण विषय का सम्बन्ध वैज्ञानिकों से उतना नहीं है जितना कि इतिहासकारों

दी है। इसमें शक नहीं कि इसके अध्ययन के लिए विज्ञान को समझने की आवश्यकता है परन्तु साथ ही उन सब साधनों और प्रवृत्तियों की भी जरूरत है जो एक इतिहासकार के पास होती हैं।

सैनिक और राजनैतिक इतिहास तो खास तौर से अलग-अलग वर्गों के हितों के बीच के लड़ाई झगड़े और संघर्ष से सम्बन्धित हैं परन्तु विज्ञान का इतिहास तो तमाम दुनिया के मनुष्यों की सामूहिक सर्जनात्मक परिस्थितियों का बयान करता है न तो वहाँ भूगोल की सीमाएँ हैं न वर्गों की, और न सिद्धान्तों की। विज्ञान का इतिहास मानव के प्राकृतिक रहस्यों के उद्घाटन के क्षेत्र में की जाने वाली तरक्की का लेखा-जोखा है और इसलिए इसकी गोलबन्दियाँ की सीमाएँ न तो किसी खास जगह और न किसी खास समय से बँधी हुई हैं। विज्ञान में पहला स्थान सहयोग और सम्मिलित यत्नों को दिया जाता है और विज्ञान की जड़ें मनुष्य की अधिकतम योग्यता और महत्वाकांक्षा में निहित होती हैं। अगर हम विज्ञान के इतिहास का अध्ययन करें और यह अध्ययन आज के अणु युग में स्कूल के बच्चों को भी कराया जा सकता है तो निश्चय ही इसका दुनिया भर के वासियों की एकता पर बड़ा भारी असर पड़ेगा क्योंकि वे यह समझ सकेंगे कि चाहे दुनिया के लोग अलग-अलग देशों में

रहते हों अलग-अलग भाषाएँ बोलते हों अलग-अलग उनके धर्म हों और अलग-अलग राजनीतिक दृष्टिकोण हों फिर भी वे सब ज्ञान की खोज में एक रहे हैं और एक ही रहेंगे।

वैज्ञानिक क्षेत्र में भारतीय देन

प्राचीन और मध्य युग में भारत ने विज्ञान और टैक्नोलॉजी में जो कुछ योगदान किया है अभी इसका भी इतिहास लिखा जाना बाकी है। भारत के बहुत से वैज्ञानिकों ने भी विज्ञान में बहुत योगदान किया है। आचार्य रे ने भारतीय रसायन शास्त्र का इतिहास लिखा है, जिसे डा॰ पी॰ आर॰ रे ने हाल में संशोधित किया है। इसी प्रकार दत्त और सिंह ने गणित शास्त्र में उल्लेखनीय काम किया है लेकिन अभी इस दिशा में बहुत खोज की जानी बाकी है। आशा है कि इस दिशा में शीघ्र ही उचित कदम उठाए जाएँगे।

यहाँ भारतीय इतिहास से विज्ञान के बारे में एक उदाहरण देना बे-मौके न होगा। आइन-ए-अकबरी में साधारण पदार्थों के आपेक्षिक घनत्व के बारे में उल्लेख मिलता है। करीब-करीब उसी समय यूरोप के वैज्ञानिक साहित्य में भी आपेक्षिक घनत्व का सही मानों में उल्लेख किया गया है। अब सवाल यह उठता है कि क्या आइन-ए

अकबरी में दी हुई सूचनाओं का आधार भारत में ही की गई खोज-बीन से सम्बन्धित है या उन सूचनाओं को तत्कालीन यूरोप के साहित्य से लिया गया है। अगर यह बात सही है कि भारत में ही यह खोज-बीन की गई तो सवाल यह उठता है कि भारत में रासायनिक क्रियाओं के अध्ययन के लिये रासायनिक-तुला का इस्तेमाल क्यों नहीं किया गया जिससे रसायन शास्त्र को और ऊँचे स्तर पर उठाया जा सकता था। कहा जाता है कि अकबर शस्त्रों के निर्माण बन्दूक बनाने धातु शोधन और रस विद्या (कीमियागिरी) में बहुत दिलचस्पी रखता था।

विज्ञान के इतिहास में एक समस्या का हल अभी होना बाकी है और वह है 300 वर्ष पूर्व पश्चिमी यूरोप में वैज्ञानिक क्रान्ति का आरम्भ। सवाल यह उठता है कि यह क्रान्ति भारत चीन या प्राचीन यूनान में क्यों नहीं हुई? पूर्वी एशिया में वर्तमान विज्ञान और टैक्नोलोजी का शुरु व शुरु विकास क्यों नहीं हुआ? नीढम ने 'चीन में विज्ञान और सभ्यता' नामक अपनी पुस्तक के पृष्ठ 166 पर लिखा है 'यूरोप में विज्ञान के इतिहास के बारे में शायद एक बहुत बड़ी विचारपूर्ण गुत्थी यह है कि वर्तमान विज्ञान और टैक्नोलोजी और इनके जन्म के समय सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के बीच ठीक-ठीक क्या सम्बन्ध था ज़ाहिर है कि

केवल वाणिज्य से सम्बन्धित एक संस्कृति ही यह काम कर सकती थी जिसे जमींदारी-सामन्तवादी सभ्यता नहीं कर सकती थी अर्थात् व्यापारी संस्कृति ही गणित-शास्त्र और प्राकृतिक ज्ञान की दो बिल्कुल अलग-अलग धाराओं में तालमेल बैठा सकती थी। नीडम ने उपर्युक्त महान् ग्रन्थ सात खण्डों में लिख कर मानवता की बहुत बड़ी सेवा की है। यह मिलता है फिर भी बौद्ध दर्शन में यह भूम घुप हमेशा बना रहा कि उसमें उन प्रश्नों का समाधान करना बेकार समझा गया जो प्रश्न अज्ञातव्य वस्तुओं से सम्बन्धित हैं। इसमें से कुछ प्रश्न ये हैं (1) क्या संसार अनादि है या नहीं (2) क्या यह अनन्त है या नहीं (3) क्या जीवात्मा दृष्टव्य है या नहीं (4) क्या मृत्यु के बाद भी 'तथागत' रहते हैं। यही कारण है कि वैज्ञानिक अटकलें लगाने के यह विरत रहा।

यदि भारत में विज्ञान के इतिहास का ठीक और व्यवस्थित रूप से अध्ययन किया जाय तो इसमें कोई शक नहीं कि ऐतिहासिक रूप से उपरोक्त महत्त्वपूर्ण और विश्व व्यापी समस्या पर बहुत प्रकाश पड़ेगा।

भारतीय इतिहास कांग्रेस के 24 वें अधिवेशन (दिसम्बर 1961) अध्यक्ष भाषण का हिन्दी रूपान्तर।

4

विज्ञान और चिकित्सा शास्त्र

चिकित्सा-विज्ञान भौतिक और जैविक विज्ञानों के विस्तृत क्षेत्र का ही एक अविभाज्य अंग है। इसलिए चिकित्सा विज्ञान में होने वाली प्रगति बहुत कुछ भौतिकी, रसायन शास्त्र और सूक्ष्माणु-जैव-विज्ञान के आधुनिक तरीकों और विधियों के भरपूर प्रयोगों पर निर्भर करती है। इसलिए प्रगति के लिए यह आवश्यक है कि चिकित्सा विभागों और दूसरे बुनियादी विज्ञानों से सम्बन्धित विभागों के बीच निकट सम्पर्क और सहकार बना रहे। इस दिशा में विश्वविद्यालय एक बहुत महत्वपूर्ण भाग अदा कर सकते हैं।

मध्य-युगीन योरोप में चिकित्सा

1543 ई. विज्ञान के इतिहास में एक स्मरणीय वर्ष है। उस वर्ष दो प्रसिद्ध ग्रंथों का प्रकाशन हुआ। चिकित्सा विज्ञान का इतिहास लिखने वाले लोग तो कभी कभी इस वर्ष को आधुनिक विज्ञान का जन्मकाल मानते हैं। 1543 में कोपरनिकस ने अपना महान ग्रन्थ प्रकाशित किया जिसमें

उसने लिखा कि सौर मंडल का केन्द्र पृथ्वी नहीं है। उसी वर्ष वैसालिऔस ने मानव शरीर शास्त्र पर अपना वृहत ग्रन्थ प्रकाशित किया। कोपरनिकस उस समय बोलोन्या विश्व विद्यालय का विद्यार्थी था। यह असल में चिकित्सा शास्त्र का विश्वविद्यालय था जो साथ चिकित्सा तथा ज्योतिष की शिक्षा के लिए बड़ा प्रसिद्ध था। उस युग में अरबी विद्वानों के प्रभाव के कारण फलित ज्योतिष और कीमियागिरी के काल्पनिक विज्ञान भी चिकित्सा-विज्ञान के अन्तर्गत समझे जाते थे। 11 वीं शताब्दी में सेलरनो नामक एक विश्व विद्यालय की स्थापना हुई थी जिसमें केवल चिकित्सा विज्ञान की शिक्षा दी जाती थी और दूसरे नम्बर पर यूरोप में बोलोन्या नाम का विश्वविद्यालय था। बोलोन्या के अभ्युदय के साथ साथ सेलरनो की ख्याति समाप्त होती गई। मैं इस बात की ओर आपका ध्यान दिलाना चाहता हूँ कि पेरिस के समकालीन धार्मिक विश्वविद्यालय के विपरीत बोलोन्या विश्वविद्यालय का शासन विद्यार्थी ही चलाते थे। वे ही प्राध्यापकों की नियुक्ति करते थे और जब कभी वे गैरहाजिर होते थे तो उन पर जुर्माना करते थे। अगर किसी प्राध्यापक को एक दिन की भी छुट्टी लेनी पड़ती तो उसे अपने विद्यार्थियों से ही छुट्टी मंजूर करानी पड़ती थी। अगर किसी दिन ऐसा होता कि प्राध्यापक अपने विषय को ऐसा रोचक न बना पाता कि उपस्थिति 5

विद्यार्थियों से भी कम हो तो उस दिन का वेतन काट लिया जाता था। अगर प्राध्यापक नगर से बाहर कहीं छुट्टी जाना चाहता तो उसे वापस आने के लिए जमानत के रूप में कुछ पैसे जमा करने पड़ते थे। कक्षा में भाषण देते समय किसी अध्यापक को यह इजाजत नहीं थी कि वह किसी कठिनाई का समाधान बाद में करे क्योंकि इस बात से यह भय बना रहता था कि कहीं प्राध्यापक उस कठिनाई के समाधान को बिलकुल ही टाल न जाय। परीक्षा में बैठने वाले उम्मीदवार को यह शपथ ग्रहण करनी पड़ती थी कि वह परीक्षक को कोई रिश्वत नहीं देगा और इसी प्रकार परीक्षक को भी यह शपथ लेनी पड़ती थी कि वह कोई रिश्वत नहीं लेगा।

सन् 1543 में वेसालियस ने मानव की शरीर रचना के सम्बन्ध में अपनी एक पुस्तक 'डी फैब्रिका ह्युमेनि कॉरपोरिस' प्रकाशित की। वास्तव में विलियम हार्वे ने बहुत कुछ वेसालियस से ही ग्रहण किया। उदाहरण के लिए सन् 1628 में हार्वे ने रक्त संचार के बारे में अपनी एक पुस्तक प्रकाशित की। डा० हार्वे को अपनी इस पुस्तक लिखने का बड़ा खमियाजा उठाना पड़ा और उसकी प्रैक्टिस मर गयी क्योंकि लोग सोचने लगे कि इतने वर्षों से स्वीकार की गई मान्यताओं के विरुद्ध लिखने वाला डाक्टर क्या भला विश्वसनीय हो सकता है? 1545 ई० में पादुआ

मे बीजगणित पर अपनी प्रसिद्ध पुस्तक लैटिन भाषा में लिखी। इसका नाम था "आर्स मैग्ना"। कार्डानो के समय भी चिकित्सा विज्ञान और फलित ज्योतिष दोनों एक ही विज्ञान के अन्तर्गत समझे जाते थे जिसे ज्योतिष चिकित्सा शास्त्र कहते थे। इसमें फलित ज्योतिष के नियम और रीति रिवाजों के अनुसार औषधि उपचार किया जाता था। कार्डानो ने 50 वर्ष की उम्र तक पहुँचते पहुँचते बहुत प्रसिद्धि (जुआ खेलने वाले विज्ञान के रूप में) प्राप्त कर ली और वह यूरोप के डा॰ वैसालियस के बाद दूसरे स्थान पर माना जाने लगा। उसकी सेवाओं के कारण लोगों ने उसकी बहुत प्रशंसा की और शानदार तोहफे दिये। एक बार इंग्लैण्ड के 15 वर्षीय सम्राट् एडवर्ड षष्ठम् ने कार्डानो से अपनी जन्मपत्री बनाने की प्रार्थना की। कार्डानो ने 1552 में यह भविष्यवाणी की कि एडवर्ड 55 वर्ष 3 महीने 17 दिन की अवस्था में स्वर्गवासी हो जायेगा। परन्तु एडवर्ड 16 में ही चल बस गया। इस गलत भविष्यवाणी के बारे में अपनी सफाई देते हुये कार्डानो ने लिखा कि (क) उसने मजबूर होकर अपने निर्णय के विरुद्ध जन्मपत्री बनाई थी (ख) उसने ज्योतिष के गणित में कुछ गलतियाँ कर दी थीं जिनका कारण बहुत जल्दी में गणना करना था (ग) उसे संदेह हो गया था कि सम्राट् अधिक दिन नहीं जियेगा और (घ) सम्राट् को जहर दिया गया है।

विज्ञान की अद्भुत प्रगति

पिछले चार सौ वर्षों के दौरान विशेष रूप से पिछले कुछ दशकों में भौतिक विज्ञान और चिकित्सा विज्ञान में अद्भुत प्रगति हुई है। इसमें कोई शक नहीं कि मनुष्य ने विज्ञान में और क्षेत्रों की अपेक्षा अभूतपूर्व उन्नति की है। इसका मुख्य कारण यह है कि विज्ञान के क्षेत्र में मनुष्य केवल वस्तुनिष्ठा सम्पूर्णता और उत्तमता की खोज में लगा रहता है और उसे संकीर्ण स्वार्थों को छोड़ना पड़ता है। परन्तु राजनीति या अन्य क्षेत्र में ऐसी कोई बात नहीं है। विज्ञान के क्षेत्र में सहयोग को बढ़ावा दिया जाता है न कि प्रतियोगिता को। आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधान के क्षेत्र में आणविक-भौतिकी अन्तरिक्ष की खोज तथा सूक्ष्माणु जैव-विज्ञान सबसे अधिक चित्ताकर्षक विषय हैं। कहा जाता है कि मनुष्य ने पिछले 10 वर्षों में जीवन की सबसे आवश्यक प्रक्रियाओं जैसे पित्र्यैक (Gene) की प्रकृति शारीरिक संगठन आदि के बारे में इतना कुछ जान लिया है जितना कुछ पिछली कितनी शताब्दियों में भी नहीं सीखा जा सका था।

भारत की गौरवमयी परम्परायें

निकट भविष्य में आने वाले महान वैज्ञानिक नामों में हमारा योग क्या होना चाहिए यह तो एक बड़ी बात है

पर एक छोटी सी बात ही ले लीजिए कि अगर हम अपने ही राष्ट्र को कल्याणकारी बनाना चाहें तो भी हमें शिक्षा और अनुसंधान पर जोर देना होगा। शिक्षा से अधिक महत्वपूर्ण और लाभकारी विनियोजन कोई और नहीं है। समृद्धि और उन्नति की कुंजी केवल ज्ञान और परिश्रम है। प्राचीन समय में हमारे देश में शिक्षा और श्रम-निष्ठा की बड़ी शानदार परम्पराएँ रही हैं। वे परम्पराएँ चिकित्सा-क्षेत्र में भी बड़ी गौरवमयी रही हैं। इस देश में कौन ऐसा व्यक्ति है जो सुश्रुत और चरक के नाम को न जानता हो? वे अपने युग के सबसे प्रसिद्ध चिकित्साशास्त्री थे। आवश्यकता इस बात की है कि आज हम अपनी प्राचीन परम्पराओं से शक्ति ग्रहण करें और प्रेरणा लें और ज्ञान और अनुसंधान के क्षेत्र में प्रकृति को नियंत्रित कर उससे *लाभ उठाने और उसे समझने के लिए उत्साह और त्याग* की भावना अपनायें। यह बात खासतौर से चिकित्सा क्षेत्र में लागू होती है। एक प्राचीन कहावत है जिसका अभिप्राय यह है कि "जिस चिकित्सक में कौशल बुद्धिमत्ता और त्याग की भावना हो उससे तो देवता भी ईर्ष्या करते हैं।" मेरा अपना विचार है कि हम उन महान् परम्पराओं को तो निभाएँ ही साथ ही सुश्रुत और चरक जैसे महान् पंडितों की मर्यादा को बनाये

रखने के लिए मेडिकल कालेजों में उनके नाम से कुछ प्रोफेसरों के पद और अनुसंधान वृत्तियाँ भी कायम करें।

चरक और सुश्रुत ने अपने ग्रन्थों में चिकित्सा के विद्यार्थियों के जो गुण बताये हैं उनका संक्षेप में नीचे उल्लेख किया जाता है —

शान्त स्वभाव सज्जनता उत्तम प्रकृति निरभिमानता बुद्धिमत्ता युक्तिसंगति स्मरण शक्ति, उदारचेता दर्शन व स्पर्शन ज्ञानेन्द्रियों में समर्थता आडंबरहीनता व्यसन हीनता वस्तुओं में गहरी पैठ शीघ्र क्रुद्ध न हो चरित्र में शुद्धता श्रम कौशल अध्ययनशीलता विज्ञान का प्रदर्शन मान हीनता दोषपूर्णता का अभाव सब प्राणियों का हित चाहना अध्यापक का आज्ञाकारी स्नेहशीलता मृदुभाषण चित्त की स्थिरता मस्तिष्क की पवित्रता प्रसन्नता शुद्ध वस्त्र संतोष ईर्ष्याहीनता और सत्यवादिता।

चिकित्सा शास्त्र में रोगी पक्ष

इन आदर्शों की भूमिका के संदर्भ में एक डाक्टर के लिए चिकित्सकों के व्यवसाय के में रोगी पक्ष के बारे में कुछ कहना चाहूँगा अनुसन्धान में जून 1961 में ... मे एक बड़ी। ...

औषधियाँ ...

पर कहा गया है कि भारत में जो दवाएँ पेटेंट की जाती हैं उनका उदाहरण बड़ा दिलचस्प है। कीटाणुनाशक औषधियाँ जैसे क्लोरोमायसीन और एक्रोमायसीन के मूल्य संसार भर की अपेक्षा भारत में सबसे ऊँचे हैं। यह एक विडम्बना है कि दुनिया में जिन देशों में दवाओं की कीमत सबसे ज्यादा है उनमें भारत भी एक देश है जब कि यहाँ प्रति व्यक्ति आमदनी बहुत कम है। इस प्रकार प्रति व्यक्ति आमदनी और दवाओं के कीमत के स्तर के बीच का अनुपात कितना ज्यादा है। दूसरे देशों में भी कहीं कहीं दवाओं के लम्बे चौड़े और अटपटे नाम पेटेंट कराये जाते हैं और इस तरह चिकित्सकों को रोगियों के लिए दवा का असली नाम लिखने के बजाय पटेन्टिड नाम लिखने को प्रोत्साहन दिया जाता है। इस तरह की एक दवा कोरटेट नाम से पेटेन्ट कराई गई है। इस नाम से यह दवा 7 डॉलर में मिलती है जबकि बिल्कुल यही दवा अपने वैज्ञानिक नाम यानि डिओक्सीकॉर्टिकोस्टरोन एसीटेट से खरीदी जाय तो उसका दाम शायद एक डॉलर होगा। इस सम्बन्ध में अमरीकी कांग्रेस की एक कमेटी के सामने गवाही देते हुये डा० सोलोमन गार्बे जो अमरीकी मैडिकल कालेज में भेषज विज्ञान के प्रोफेसर हैं कहा था "दवाओं को अलग-अलग नाम देने से पैदा हुई गलत फहमी को समझने के लिये यदि हम यह मान

रखने के लिए मेडिकल कालेजों में उनके नाम से कुछ प्रोफेसरों के पद और अनुसंधान वृत्तियाँ भी कायम करें।

चरक और सुश्रुत ने अपने ग्रन्थों में चिकित्सा के विद्यार्थियों के जो गुण बताये हैं उनका संक्षेप में नीचे उल्लेख किया जाता है —

शान्त स्वभाव सज्जनता उत्तम प्रकृति निरभिमानता बुद्धिमत्ता युक्तिसंगति स्मरण शक्ति, उदारचेता व्यसन में संयम ज्ञानेन्द्रियों में समचता आडंबरहीनता व्यसन हीनता वस्तुओं में गहरी पैठ शीघ्र क्रुद्ध न हो चरित्र में शुद्धता प्रेम कौशल अध्ययनशीलता विज्ञान का प्रदर्शन काम हीनता शोक मूढ़ता का अभाव सब प्राणियों का हित चाहना अध्यापक का आज्ञाकारी स्नेहशीलता मृदुभाषण चित्त की स्थिरता मस्तिष्क की पवित्रता तत्परता शुद्ध वस्त्र नीरोग ईर्ष्याहीनता और सत्यवादिता।

चिकित्सा शास्त्र में रोगी पक्ष

इस शताब्दी की भूमिका के सन्दर्भ में एक बात के लिए चिकित्सकों के व्यवसाय में भी रोगी पक्ष के बारे में कुछ कहना चाहूँगा। इस सम्बन्ध में सन् 1961 में अमेरिका में एक बड़ी दिलचस्प रिपोर्ट प्रकाशित हुई था ज्ञान की औषधियों की पीछे छिपी कहानी है। इसके पृष्ठ 17

में कि औषधि निर्माता 'नयी फर्मियों' का निर्माण करने लग जाते हैं तो ऐसी फर्मियाँ दुकानों पर अलग-अलग नाम से मिलेंगी और उन फर्मियों के एक साथ में निर्माताओं द्वारा 300-500 तक नए नाम दे दिए जायेंगे। आज बहुत कुछ नई बात औषधियों के बारे में मालूम होती है।"

कुछ काम की बातें

इवानपेत्रोविच पावलोव (1849-1936) जो आधुनिक युग के एक बहुत बड़े चिकित्सा शास्त्री थे ने कहा है

'संतोष और गम्भीरता का आचरण सीखो। तथ्यों को जानो उनकी आपस में तुलना करो और उनका संग्रह करो।'

'विषय में सम्पूर्णता प्राप्त करो ठीक एस ही जैसे चिड़िया बिना आराम किए अपने पंखों के बल पर हवा में उड़ सकती है। तथ्य ही वैज्ञानिक के लिए हवा है और बिना उनके तुम नहीं उड़ सकते। तथ्यों के बिना तुम्हारे सिद्धान्त व्यर्थ के प्रयत्न सिद्ध होंगे।

'सीखो प्रयोग करो। भलीभांति देखो पर तथ्यों की केवल सतह पर मत रहो। बल्कि गहराई में पहुँचो। प्राकृतिक रहस्यों में गहरी पैठ होनी चाहिए और बराबर उन नियमों की खोज करते रहो जिन पर वे रहस्य आधारित हैं।

'दूसरी बात है शालीनता। यह कभी मत सोचो कि तुम सभी कुछ पहले से ही जानते हो। भले ही लोग समझें कि तुम बहुत ज्ञानवान हो पर तुम्हें यह कहने का साहस होना चाहिए कि मैं अज्ञानी हूँ।

'कभी घमंड न करो घमंड से आदमी जिद्दी बन जाता है और उसका नतीजा यह होता है कि आदमी कोई उपयोगी सलाह या मित्रतापूर्ण सहायता लेने से इनकार कर देता है और इस प्रकार मनुष्य वस्तुनिष्ठ नहीं रह जाता।

'तीसरी चीज है ज्ञान के लिए असीम निष्ठा। ज्ञान तो मनुष्य सारे जन्म भर भी अर्जित करता रहे तो काफी नहीं है। एक जन्म क्या कई जन्मों की साधना भी ज्ञान के लिए काफी नहीं होती। इसलिए अपने काम और अनुसंधान में निरन्तर निष्ठा बनाये रखो।'

यह जरूरी नहीं है कि सभी वैज्ञानिकों को ख्याति मिले, भरपूर आमदनी मिले या पैसा मिले। लेकिन इतनी बात तो निश्चित है कि विज्ञान और जिज्ञासा के क्षेत्र में मनुष्य कुछ ऐसा संतोष प्राप्त करता है जो उसकी आत्मा को उन्नत करता है और जिसका महत्त्व स्थायी है।

एम० एस० [illegible] [illegible] [illegible] के वार्षिकोत्सव [illegible]
962 पर दिए भाषण का रूपान्तर।

वि
ज्ञा
न

और

प्र
ति
र
क्षा

2

सैनिक और वैज्ञानिक का 'साथ साथ सोचने का विचार' कुछ नया सा लगता है पर आज के युग में प्रतिरक्षा ध्येय की प्राप्ति के लिये यह सह चिंतन अनिवार्य है।

विज्ञान और प्रतिरक्षा

विज्ञान की बुनियाद परीक्षण और निरीक्षण पर आधारित है। इसलिए यदि कोई वैज्ञानिक वर्तमान ज्ञान की धारा से अलग पड़ कर अपने प्रयोग निरीक्षण और सिद्धान्त विकसित करता है तो वे सीमित और एकांगी होते हैं। इसलिए प्रत्येक वैज्ञानिक के लिए यह जरूरी है कि वह अपने जमाने के वैज्ञानिकों के सिद्धान्तों को समझे-बूझे और उनके परीक्षणों और निरीक्षणों का अधिक से अधिक अध्ययन करे। ऐसा होने पर जहाँ वैज्ञानिक एक-दूसरे के विचारों से परिचित होते हैं वहीं वैज्ञानिक सूचनाओं और विचारों का निरन्तर लेन-देन विज्ञान की गति को निश्चित करने में महत्त्वपूर्ण भाग अदा करता है।

आजादी से पहिले भारतीय वैज्ञानिकों के लिए प्रतिरक्षा विज्ञान के दरवाजे बन्द थे। इसलिए यह विषय उनके लिए करीब-करीब अछूता ही था। इसके कुछ ऐतिहासिक कारण थे। उस जमाने में इक्के-दुक्के वैज्ञानिकों को यह सुविधा मिली हुई थी। पर ऐसे वैज्ञानिक भी जो

सरकारी महकमों में लगे हुए थे केवल स्टोरों में रखे प्रतिरक्षा सम्बन्धी सामान की जाँच पड़ताल ही करते थे।

द्वितीय महायुद्ध के दौरान में कुछ टैक्नीकल संस्थाओं की सरकार ने स्थापना की और इसके साथ ही कानपुर, दिल्ली आदि दूसरे स्थानों में कुछ प्रयोगशालायें भी खोली गईं। पर इन संस्थाओं का काम भी बहुत कुछ जाँच पड़ताल तक ही सीमित था।

आजादी के बाद सन् 1948 के अन्त में 'प्रतिरक्षा विज्ञान संगठन' नाम की एक संस्था कायम की गई। इसका काम आमतौर पर प्रतिरक्षा विज्ञान की विभिन्न वैज्ञानिक बुनियादी पहलुओं और समस्याओं से सम्बन्धित था। इनका ध्येय है एक विषय ऑपरेशनल रिसर्च' का यानी विभिन्न अस्त्र-शस्त्रों को असली युद्ध जैसा वातावरण बना कर उनकी परख करना।

कुछ वर्ष बाद दिल्ली में एक प्रतिरक्षा विज्ञान प्रयोगशाला स्थापित की गई और इसी तरह की दो और नौसेना अनुसंधान शालायें खोली गईं। प्रतिरक्षा विज्ञान के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए, उसको और अधिक व्यापक बनाने के लिए और उसकी गति को तेज करने के लिए सम्पूर्ण प्रतिरक्षा अनुसंधान के विकास के प्रयत्नों में भारी तब्दीली की गई। इसके फलस्वरूप तकनीकी विकास संस्थान और प्रतिरक्षा प्रयोगशालायें दोनों को मिलाकर

प्रतिरक्षा अनुसंधान तथा विकास संगठन नाम का एक बड़ा महकमा बनाया गया।

इन सभी संस्थाओं में आमतौर पर कुछ योजनायें बनाकर उसके अनुसार काम किया जाता है। इनमें से अधिकांश योजनाओं में पहिले जोनवीन की वे चीजें हाथ में ली जाती हैं जिनकी प्रतिरक्षा विभाग सिफारिश करता है। साथ ही वैज्ञानिक संस्थाओं से भी इन सभी योजनाओं के बारे में सलाह करली जाती है।

वैज्ञानिक और सैनिक अधिकारी

प्रतिरक्षा वैज्ञानिकों में सैद्धान्तिक और व्यावहारिक विज्ञानवेत्ता इंजीनियर व शिल्प-विशेषज्ञ सभी आते हैं। प्रतिरक्षा विज्ञान के क्षेत्र में यह बहुत जरूरी है कि वहां के वैज्ञानिक और सैनिक अधिकारी कन्धे से कन्धा मिला कर काम करें। प्राय सैनिक अधिकारी अनुसंधान केन्द्रों में 2-3 साल काम करने के बाद अपनी यूनिटों को वापस चले जाते हैं। असल में उनका मुख्य उद्देश्य यह होता है कि वे लोग ही व्यवहार में आने वाली दिक्कतों और समस्याओं को समझते हैं और इसीलिए वे ही इनके बारे में बता सकते हैं। इसलिए उनकी उपस्थिति से यह लाभ होता है कि प्रतिरक्षा विज्ञान संस्थाओं में होने वाले काम में सैनिक अधिकारियों का पूरा विश्वास होता है और

यह है भी बहुत जरूरी। इसलिए वैज्ञानिकों को भी इस बात के लिए प्रोत्साहन दिया जाता है कि वे सेना के स्कूलों में होने वाले कोर्सों और "डिफेंस सर्विसेज स्टाफ कालेज" के कोर्स में जायें। वैज्ञानिक प्रायः सेना के संस्थानों में जाते हैं और वहाँ का अध्ययन करते हैं।

1952 में दिल्ली में आर्मामेंट के अध्ययन के लिए एक संस्था खोली गई। इस संस्था में हथियारों के मौलिक सिद्धान्तों के बारे में कुछ चुने हुए सैनिक अधिकारियों को प्रशिक्षण दिया जाता है। इस संस्था में प्रतिरक्षा विज्ञान के कुछ विशेष विषयों पर अनुसंधान का काम होता है। यह संस्था लगभग वैसा ही काम करती है जैसा कि एक विश्वविद्यालय से सम्बन्धित कालेज काम करता है। इस संस्था में असैनिक वैज्ञानिक भी कई विश्वविद्यालयों और संस्थाओं से आते हैं और प्रतिरक्षा के अलग अलग पहलुओं के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं। इस प्रकार प्रतिरक्षा-वैज्ञानिकों को भी लाभ पहुँचता है क्योंकि वे भारतीय वैज्ञानिकों के नये नये विचारों और अनुसंधानों के बारे में जानकारी प्राप्त करते रहते हैं।

प्रतिरक्षा अनुसन्धान

प्रतिरक्षा-वैज्ञानिकों को बराबर एक सेना-संपर्क

(कैडर) तैयार की गई है। इस कैडर के अन्तर्गत प्रतिरक्षा मंत्रालय में काम करने वाले सभी असैनिक वैज्ञानिक हैं जिनका काम अनुसंधान विकास डिजाइन या निरीक्षण से सम्बन्धित है। इस कैडर के बनाने का उद्देश्य यह है कि योग्य और प्रतिभावान वैज्ञानिक इस ओर आकर्षित हो सकें और इसमें स्थाई रह सकें। प्रतिरक्षा मंत्रालय एक 'डिफेंस साइंस जरनल' (पत्र) भी निकालता है जिसका उद्देश्य सेना में रुचि रखने वाले लोगों में अनुसंधान सम्बन्धी रुचि पैदा करना है।

प्रतिरक्षा वैज्ञानिकों की समय समय पर गोष्ठियां होती रहती हैं जिनमें विश्वविद्यालयों और अनुसंधान संस्थाओं से बड़े बड़े वैज्ञानिकों को बुलाया जाता है। पिछले वर्षों में प्रक्षेपणास्त्र राकेट सामरिक अनुसंधान तथा ट्रांजिस्टर पर गोष्ठियां हुईं। इन गोष्ठियों में विश्वविद्यालयों के वैज्ञानिकों के भाग लेने के फलस्वरूप अब कई विश्वविद्यालयों ने गणितशास्त्र के स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में व्यावहारिक बैलस्टिक्स (प्रक्षेपणास्त्र विज्ञान) को भी शामिल कर लिया है। पिछले दस तीस वर्षों में इस विषय पर कुछ अनुसंधान लेख प्रकाशित किये गये हैं।

पिछले कुछ वर्षों में प्रतिरक्षा विज्ञान प्रयोगशालाओं में निम्नलिखित विषयों पर अनुसंधान किये गए हैं—बैलास्टिक्स (प्रक्षेपास्त्र) विस्फोटक वायुमण्डलीय पाश्व

सैन्य मनोविज्ञान सामरिक अनुसंधान तथा इनसे संबंधित विषय। पिछले दिनों मस्त्रास्त्रों से सम्बन्धित संस्था (इन्स्टीट्यूट आफ आमर्मिंट स्टेडीज) में विस्फोटकों की रचना के सम्बन्ध में और विस्फोट क्रिया पर कुछ अनुसंधान किये गये और प्रतिरक्षा विज्ञान प्रयोगशाला में भी इसी तरह के कुछ अनुसंधान हुए। यहाँ पर टैंकों आदि की लोहे की चादरों का भेदन वाली खास तरह की गोलियों को बनाने और सुधारने का काम किया गया है। इनकी विशेषता यह होती है जब इनका विस्फोट होता है तो इनमें विस्फोटक पदार्थ बजाय बिखरने के एक ही दिशा में केन्द्रित हो जाते हैं जिससे यह संयुक्त शक्ति लक्ष्य पर ही केन्द्रित हो जाती है। इनमें से निकले सूक्ष्म कणों की गति बहुत तेज यानी करीब 10 मील प्रति सैकेण्ड की चाल से पिघली धातु की फुहार के रूप में निकलती है। इस सिद्धान्त के आधार पर हम इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि ऊपरी वायुमण्डल में धातुओं के बहुत ही सूक्ष्म कणों को भेजा जा सकता है और अगर इस प्रकार के प्रयोग किये जायें तो बहुत सम्भव है कि वे वायु विज्ञान के मतलब के साबित होंगे। यह काम बिना किसी विशेष कठिनाई के किया जा सकता है बशर्ते कि यह खास तरह का गोला राकेट गुब्बारों की सहायता से आकाश में भेज कर विस्फोटित किया जाय (गोलाकी

सुधार करना। पहले उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह जरूरी है कि सामरिक अनुसंधान का काम जारी रखा जाए जब कि दूसरे उद्देश्य की पूर्ति के लिए देश के औद्योगिक उत्पादन तथा ऊँचे दर्जे का वैज्ञानिक ज्ञान हासिल करना जरूरी है।

लड़ाई से सम्बन्धित अनुसंधान का मतलब है कि युद्ध में काम आने वाले हथियारों की प्रभावकारिता का वैज्ञानिक अध्ययन और विश्लेषण किया जाय और इस प्रकार मिलने वाले नतीजों से फायदा उठाया जाय। पिछली लड़ाई में यह एक महत्वपूर्ण विषय रहा है। जितनी मेहनत इस विषय की खोजबीन पर की गई शायद ही किसी और विषय पर इतनी ही मेहनत इतनी कारगर साबित हुई हो। प्रतिरक्षा के अनुसंधानक्षेत्र में हथियारों की युद्ध में प्रभावकारिता (हथियार कौशल और हथियारों के इस्तेमाल से सम्बन्धित जानकारी) आजकल अगर सबसे ज्यादा नहीं तो कम से कम एक बहुत महत्वपूर्ण विषय बन गया है। आजकल जब कभी किसी नये हथियार का आविष्कार होता है तो यह निश्चय करना कि यह नया हथियार इस समय इस्तेमाल किये जाने वाले हथियार की अपेक्षा ज्यादा अच्छा है यह एक सबसे ज्यादा पेचीदा मसला बन जाता है और यह अगर निर्णय कर भी लिया जाय कि नया हथियार पुराने की अपेक्षा अच्छा है तो एक

अधिक से अधिक लाभ उठा सकते हैं और स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार उनमें सुधार भी कर सकते हैं। सिर्फ इतना ही नहीं बल्कि हम हथियारों को अपनी आवश्यकता के अनुसार छांट भी सकते हैं।

यह कहने की जरूरत नहीं है कि किसी भी देश की अस्त्र-शस्त्रों की नीति उस देश की युद्ध चाल तथा अन्य आवश्यकताओं पर निर्भर करती है। वास्तव में किसी देश के हथियार उस देश की स्थितियों की अभिव्यक्ति होते हैं। इस दिशा में हमें लकीर का फकीर नहीं बनना है और परम्परागत तरीके नहीं अपनाने हैं। बल्कि हमारे अन्दर सोचने विचारने की मौलिकता होनी चाहिए। हमारे देश के प्रसाधन सीमित हैं। इसलिए यह भी जरूरी है कि हम हथियारों के विकास और डिजाइन के सिद्धान्तों को अच्छी तरह समझें और अपने सीमित साधनों के मुताबिक बुद्धिमत्तापूर्वक हथियार छांटें और कम से कम खर्चा करके उनका उत्पादन करें। यह एक सर्वमान्य सिद्धान्त है कि जितना कोई देश गरीब होगा उतनी ही ज्यादा देशवासियों को सोचने की जरूरत पड़ेगी। इस विषय में इंगलैंड की आणविक की नीतियों परिस्थितियों के बारे में "लार्ड रदरफोर्ड" के ये शब्द उल्लेखनीय हैं। "अमरीकियों के पास तो पैसा है हमारे पास नहीं है इसमें ज्यादा सोचने की जरूरत है"।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि किसी भी देश की सशस्त्र सेनाओं के हथियारों और साज-सामान की कार्यकुशलता और स्तर मुख्यरूप से उस देश की तकनीकी और औद्योगिक क्षमता पर निर्भर करता है। इस प्रकार अगर इन दोनों स्तरों में बहुत ज्यादा फर्क होता है तो यह फर्क ज्यादा दिन तक टिका नहीं रह सकता। कहने का मतलब यह है कि जितना कोई मुल्क ज्यादा औद्योगिक रूप से प्रगतिशील होगा उतने ही सशस्त्र सेनाओं के पास हथियार और साज-सामान ज्यादा उन्नत किस्म के होंगे। आमतौर से देखा गया है कि तकनीकी रूप से पिछड़े हुए देशों में आधुनिकतम हथियारों की मांग के बारे में हाय-हाय मची रहती है और यह जरूरी नहीं है कि यह मांग सेनाओं की ही हो। इसका कारण साफ है। कारण यह है कि आमलोग इस बात का अन्दाजा नहीं लगा पाते कि कौन सी चीज मुमकिन है और कौन सी नहीं कौन सी चीज मुश्किल है और कौन सी आसान और क्या जरूरी है और क्या गैरजरूरी। इनमें सब चीजों का व्यवहार में अन्दाज लगाना बहुत ही मुश्किल है। खासतौर से उन मुल्कों में जो तकनीकी और आधुनिक लिहाज से पिछड़े हुए हैं यह और भी मुश्किल है। इन सब कार्यों के लिए ऐसे योग्य सैनिक अधिकारी और वैज्ञानिकों की आवश्यकता है जिन में साहस और चरित्र हो। और यह

सैनिकों को अपने क्षेत्रों में अलग अलग छोड़ दिया जाय तो जाहिर है कि वे अपने ही तरीके से एकांगी रूप से सोचेंगे। इस दृष्टि से मिल-जुल कर सोचना एक नयी चीज है और समस्याओं के समाधान के लिए बहुत सहायक सिद्ध होती है। नयी हालतों में एक पक्ष दूसरे पक्ष को भी देखता है और उसके बारे में अपनी गलत पूर्व धारणाओं को छोड़ता रहता है। यह सौभाग्य की बात है कि इस क्षेत्र में भारत में परम्परागत तरीकों ने कोई रोड़ा नहीं अटकाया।

कुछ समय पहले की बात है कि गोला बारूद के कुछ पुराने भंडार को ठिकाने लगाने का सवाल पेश हुआ और यह निर्णय किया गया कि उस भंडार को समुद्र में डुबा दिया जाय। हमारी थल सेना ने कुछ कारणों से यह काम करना पसंद नहीं किया। इसके अलावा बात यह भी थी कि इस भंडार को ले जाने में काफी खर्च होता। संयोग की बात है कि उस समय मिल जुलकर सोचने की वजह से इस समस्या का समाधान निकल आया और उसके फलस्वरूप उस भंडार में बहुत सारी चीजों को अलग अलग करके ठिकाने लगाया गया जिससे न सिर्फ पैसा मिला बल्कि विदेशी मुद्रा की भी बचत हुई।

सैनिकों और वैज्ञानिकों का सहयोग

अभियंता और विज्ञान अब बहुत अधिक परस्पर

सम्बन्धित है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि वैज्ञानिकों से हमारा अभिप्राय इंजीनियर आदि से भी है। वैज्ञानिक जिन क्षेत्रों में सेना को सहयोग देते हैं वे निम्नलिखित हैं —

(क) हथियारों की उपलब्धि वैज्ञानिक भिन्न-भिन्न हथियारों की युद्ध में प्रभावकारिता की जाँच पड़ताल करता है और इस निर्णय में सहायता देता है कि अपनी खरीदने की क्षमता के अनुसार हम कौन से सबसे अधिक प्रभावकारी हथियार खरीद सकते हैं।

(ख) वर्तमान हथियारों का अधिकतम प्रयोग यह अत्यधिक महत्वपूर्ण विषय है और इसमें युद्ध से सम्बन्धित वैज्ञानिकों के अनुसंधान का महत्वपूर्ण योग रहा है और जिसे सभी मानते हैं। जितनी मेहनत इस क्षेत्र में की जाती रही है उसके अनुपात में इसका सबसे अधिक लाभ भी मिला है।

(ग) वर्तमान हथियारों में सुधार इस विधि द्वारा हथियारों को स्थानीय स्थितियों के अनुकूल बनाया जाता है उदाहरण के लिए रडार में देश-विशेष के अनुसार परिवर्तन।

(घ) अनुसंधान विकास और डिजाइन भारत में नये हथियार बनाना इसका मुख्य काम है।

(ङ) विदेशों में इस्तेमाल किये जाने वाले उपाय

हथियारों का अध्ययन और इस विषय में अनुसंधान।

(छ) सर्वथा नये हथियारों का विकास और अनुसंधान।

(ज) निरीक्षण की विधियों में सुधार।

मूलभूत सिद्धांत

अब हम यहां प्रतिरक्षा अनुसंधान के काम से सम्बन्धित कुछ मूलभूत सिद्धांतों का संक्षेप में उल्लेख करेंगे। ये सिद्धांत निम्नलिखित हैं —

(1) प्रतिरक्षा में अनुसंधान और विकास दो अलग अलग क्षेत्र नहीं हैं। बल्कि यह एक समन्वित कार्यक्रम है। इन दोनों के बीच कोई वास्तविक विभाजन रेखा नहीं है। अनुसंधान-विकास का सम्बन्ध उत्पादन और निरीक्षण से है।

(2) प्रतिरक्षा के अनुसंधान और विकास का कार्य इस तरह होना चाहिए ताकि इस काम में सेनाओं को पूरा विश्वास हो। जिन लोगों को अनुसंधान और विकास का काम सौंपा है उनकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखा जाय न कि उन्हें निर्देशित किया जाए। इनका नियंत्रण और निरीक्षण केवल निपुण व्यक्तियों के हाथ में होना चाहिए।

(3) प्रतिरक्षा अनुसंधान और विकास का काम

देश के सामान्य अनुसंधान और विकास के काम से मेल खाता हुआ होना चाहिए।

(4) सेनाओं और वहां के संगठन और काम करने की परिस्थितियां ऐसी होनी चाहिए ताकि अच्छे से अच्छे और योग्य से योग्य आदमी इसमें आ सकें और अपना काम जारी रख सकें।

हमारे देश म वैज्ञानिक प्रसाधन जिसमें वैज्ञानिक और विज्ञान की सामग्री दोनों शामिल हैं बहुत ही सीमित हैं। इसलिए जरूरत इस बात की है कि हम सबसे महत्वपूर्ण समस्याओं पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करें और उनके समाधान के लिए प्रयत्न करें। हम इस क्षेत्र को बहुत ज्यादा नहीं फैलाना चाहिए। वैज्ञानिकों को सैनिकों से भी बहुत कुछ सीखना है क्योंकि सैनिकों के पास सदियों पुराना अनुभव है, रणनीति से सम्बन्धित चिंतन है और सामरिक कामों का ज्ञान है।

हमें पहले किन समस्याओं के निवारण में लगना चाहिए और किन समस्याओं को प्राथमिकता देनी चाहिए— यह एक ऐसा विषय है जिसमें वास्तव में बहुत कठिनाई पेश होती है। इसलिए समस्याओं को प्राथमिकता देते समय तीन बातें आमतौर पर ध्यान में रखनी चाहिए। पहली बात यह है कि वह समस्या सीधी सेना से सम्बन्धित हो और उस पर की गई खोजबीन से सेना को सीधा लाभ

हथियारों का अध्ययन और इस विषय में अनुसंधान।

(छ) सर्वथा नये हथियारों का विकास और अनुसंधान।

(ज) निरीक्षण की विधियों में सुधार।

मूलभूत सिद्धांत

अब हम यहां प्रतिरक्षा अनुसंधान के काम से सम्बन्धित कुछ मूलभूत सिद्धांतों का संक्षेप में उल्लेख करेंगे। ये सिद्धांत निम्नलिखित हैं —

(1) प्रतिरक्षा में अनुसंधान और विकास दो अलग अलग क्षेत्र नहीं हैं। बल्कि यह एक समन्वित कार्यक्रम है। इन दोनों के बीच कोई वास्तविक विभाजन रेखा नहीं है। अनुसंधान-विकास का सम्बन्ध उत्पादन और निरीक्षण से है।

(2) प्रतिरक्षा के अनुसंधान और विकास का कार्य इस तरह होना चाहिए ताकि इस काम में सेनाओं को पूरा विश्वास हो। जिन लोगों को अनुसंधान और विकास का लाभ उठाना है उनकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखा जाए न कि उन्हें निर्देशित किया जाए। इसका नियंत्रण और निर्देशन केवल निपुण व्यक्तियों के हाथ में होना चाहिए।

(3) प्रतिरक्षा अनुसंधान और विकास का काम

देश के सामान्य अनुसंधान और विकास के काम से मेल खाता हुआ होना चाहिए।

(4) सेनाओं और वहां के संगठन और काम करने की परिस्थितियां ऐसी होनी चाहिए ताकि अच्छे से अच्छे और योग्य से योग्य आदमी इसमें आ सकें और अपना काम जारी रख सकें।

हमारे देश में वैज्ञानिक प्रसाधन जिसमें वैज्ञानिक और विज्ञान की सामग्री दोनों शामिल हैं बहुत ही सीमित हैं। इसलिए जरूरत इस बात की है कि हम सबसे महत्वपूर्ण समस्याओं पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करें और उनके समाधान के लिए प्रयत्न करें। हमें इस क्षेत्र को बहुत ज्यादा नहीं फैलाना चाहिए। वैज्ञानिकों को सैनिकों से भी बहुत कुछ सीखना है क्योंकि सैनिकों के पास सदियों पुराना अनुभव है रणनीति से सम्बन्धित चिंतन है और सामरिक बातों का ज्ञान है।

हमें पहले किन समस्याओं के निवारण में लगना चाहिए और किन समस्याओं को प्राथमिकता देनी चाहिए— यह एक ऐसा विषय है जिसमें वास्तव में बहुत कठिनाई पेश होती है। इसलिए समस्याओं को प्राथमिकता देते समय तीन बातें आमतौर पर ध्यान में रखनी चाहिए। पहली बात यह है कि वह समस्या सीधी सेना से सम्बन्धित हो और उस पर की गई खोजबीन से सेना को सीधा लाभ

पहुँचे। दूसरी बात यह है कि किसी समस्या का समाधान उपलब्ध साधनों के द्वारा ही सम्भव हो और अन्तिम बात यह है कि समस्या का जल्दी से जल्दी समाधान हो। दिन-ब-दिन विज्ञान की प्रगति के कारण नये नये हथियार बन रहे हैं और प्रगति इतनी तेज रफ्तार से हो रही है कि वैसी पहले जमाने में कभी नहीं हुई थी। कहा जाता है कि वैज्ञानिक ज्ञान हर 10 से 15 साल में दुगना हो जाता है। खैर, हम इस तर्क को आगे नहीं बढ़ायेंगे। लेकिन यहां दो बातें जाननी बहुत जरूरी हैं। पहली बात यह है कि विज्ञान की आश्चर्यजनक उन्नति के कारण हथियारों की प्रणालियां दिन-ब-दिन ज्यादा पेचीदा होती जा रही हैं और जो हथियार अभी 10 साल पहले इस्तेमाल किये जाते थे आज वे पुराने पड़ गये हैं। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि हथियारों की इतनी ज्यादा प्रणालियां हो गयी हैं कि उनमें से किसी खास प्रणाली को अपनाना एक पेचीदा काम बन गया है क्योंकि सभी प्रणालियों में से किसी विशेष प्रणाली का छांटना वास्तव में एक समस्या है। यहां एक उदाहरण देना अनुचित नहीं होगा। अगर कोई बैटल डिस्ट्रॉयर पूरी तौर से सज्जित हो तो उसका वजन करीब 30 हजार टन होगा। इस वजन से जाहिर है कि साज-सामान में कितनी पेचीदगी और वृद्धि हुई है। पी एम ए० विजिगर ने अपनी एक पुस्तक "न्यूक्लीयर

वैपन्स एण्ड फौरन पौलिसी" (अणु अस्त्र और विदेश नीति) में लिखा है "अगर हम अमरीका से मध्य पूर्व को एक डिवीजन भेजना चाहें तो अमरीका की पूरी वायु सेना और रिजर्व बेड़े के 30 दिन की सेवाओं की जरूरत होगी और यह भी काम 30 दिन में तभी सम्भव होगा बशर्ते कि सभी परिवहन यूनिटें ठीक काम कर रही हों और उन्हें किसी दूसरे काम पर न लगाया जाय।" किसी डिवीजन के रखरखाव के लिए हर महीने करीब 10 हजार टन सप्लाई की जरूरत होती है।

विभिन्न शस्त्र प्रणाली

अब हम यहाँ भिन्न भिन्न शस्त्र प्रणालियों के बारे में कुछ चर्चा करेंगे। अमरीकी युद्ध अनुसंधान वैज्ञानिकों में अत्यधिक प्रसिद्ध वैज्ञानिक एलिस जौनसन ने लिखा है "प्राचीन जमाने में जो शस्त्र प्रणालियां प्रचलित थीं वह बहुत लम्बे समय तक चलती रहती थी क्योंकि विकास की गति बहुत धीमी थी और एक ही तरह के हथियार बहुत सालों तक चलते रहते थे। एक हजार ई० तक तो एक ही तरह के अस्त्र-शस्त्र करीब 400 साल की अवधि तक चलन रहे। सन् 1500 से लेकर उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी तक भी अस्त्र प्रणालियां करीब करीब 50-50 साल तक चलती रहीं। लेकिन आज जो अस्त्र-शस्त्र प्रणालियां

वाला खर्चा एक प्रतिशत न होकर राष्ट्रीय आय का 0.1 प्रतिशत है। जिन देशों की प्रति व्यक्ति आय अमेरिका की प्रति व्यक्ति आय से 100 का हिस्सा है वहां अनुसंधान पर होने वाला खर्चा 0.1 प्रतिशत है। उदाहरण के लिए अमेरिका का प्रतिरक्षा अनुसंधान और विकास पर होने वाला खर्चा प्रति वर्ष तीस अरब डालर है और हर साल इस खर्चे में 5 से 10 प्रतिशत तक बढ़ोतरी होती है (इस प्रकार प्रति वर्ष पिछले वर्ष की अपेक्षा 100 करोड़ रुपए से ज्यादा खर्चा बढ़ जाता है।) ब्रिटेन में प्रतिरक्षा में अनुसंधान पर हुए वाला खर्चा प्रति वर्ष 20 करोड़ पौंड है। इस सम्बन्ध में एक दिलचस्प बात यह है कि ब्रिटेन में की जवान का औसत खर्चा 2000 पौंड सालाना से ज्यादा है और कुछ ही सालों में इसके 3000 पौंड होने की सम्भावना है। यह खर्चा सं० रा० अमरीका इससे तीन गुना है। इस खर्चे में से अधिकांश भाग अस्त्र-शस्त्र के आधुनिकीकरण पर खर्च होता है। एक दिलचस्प बात यह है कि इन देशों में प्रति (अनुसंधान) सैनिक पर होने वाला खर्चा करीब-करीब उतना ही है जितना कि एक सैनिक पर। हमारे देश में हर जवान पर होने वाला खर्चा ब्रिटेन का एक चौथाई है और यह खर्चा हमारे यहां के सैनिक के प्रशिक्षण खाने वेतन आदि पर ही होता है। साज-सामान पर होने वाला

खर्चा तो बहुत ही कम होता है। इसलिए हमारे देश के लिए यह और भी ज्यादा जरूरी हो जाता है कि साज सामान पर होने वाले खर्च का पूरा-पूरा लाभ उठाया जाए। यह बात बिलकुल साफ है कि प्रतिरक्षा में यदि दरअसल किफायतसारी करनी है तो वह केवल प्रतिरक्षा अनुसंधान द्वारा ही संभव है।

ब्रिटेन जैसे देशों में प्रतिरक्षा पर होने वाले कुल खर्चे का दसवां हिस्सा विकास और अनुसंधान पर खर्च होता है। यों तो अनुसंधान के बजटों को देखने से ऐसा मालूम होता है कि इस क्षेत्र में कोई ज्यादा उपलब्धियां नहीं हुई लेकिन इस बात का जरूर सबूत मिलता है कि अनुसंधान के क्षेत्र में जोर शोर से प्रयत्न हो रहे हैं। जहां तक हमारे देश का सवाल है प्रतिरक्षा बजट के 10 प्रतिशत को अनुसंधान पर खर्च करने का सवाल ही नहीं उठता क्योंकि हमारे देश की आर्थिक स्थिति इतनी अच्छी नहीं है। हां इस बात की आवश्यकता तो है ही कि हम प्रयत्नों में तनिक भी ढिलाई न छोड़ें जोर-शोर से अपनी कोशिशों में लग जाएं और यह तभी आशा की जा सकती है कि प्रतिरक्षा अर्थ व्यवस्था पर अनुसंधान का स्वस्थ प्रभाव पड़ेगा। यह बात याद रखने योग्य है कि प्रतिरक्षा अनुसंधान से देश में व्यावहारिक अनुसंधान को प्रोत्साहन और बल मिलता है। प्रतिरक्षा में बहुत सारे ऐसे काम

वाला खर्च एक प्रतिशत न होकर राष्ट्रीय आय का 0·1 प्रतिशत है। जिन देशों की प्रति व्यक्ति आय अमेरिका की प्रति व्यक्ति आय के 100 वां हिस्सा है वहां अनुसंधान पर होने वाला खर्च ·01 प्रतिशत है। उदाहरण के लिए अमेरिका का प्रतिरक्षा अनुसंधान और विकास पर होने वाला खर्च प्रति वर्ष तीन अरब डालर है और हर साल इस व्यय में 5 से 10 प्रतिशत तक बढ़ोतरी होती है (इस प्रकार प्रति वर्ष पिछले वर्ष की अपेक्षा 100 करोड़ रुपए से ज्यादा खर्च बढ़ जाता है।) ब्रिटेन में प्रतिरक्षा व अनुसंधान पर होने वाला खर्च प्रति वर्ष 20 करोड़ पौंड है। इस सम्बन्ध में एक दिलचस्प बात यह है कि ब्रिटेन में भी जवान का औसत खर्च 2000 पौंड सालाना से ज्यादा है और कुछ ही सालों में इसके 3000 पौंड होने की सम्भावना है। यह खर्च सं. रा. अमरीका में इससे तीन गुना है। इस खर्चे में से अधिकांश भाग साज-सज्जा व आधुनिकीकरण पर व्यय होता है। एक दिलचस्प बात यह है कि इन देशों में प्रति (अनुसंधान) वैज्ञानिक पर होने वाला खर्च करीब-करीब उतना ही है जितना कि एक सैनिक पर। हमारे देश में हर जवान पर होने वाला खर्च ब्रिटेन का एक चौथाई है और यह सब खर्च हमारे यहां के सैनिक के प्रशिक्षण खाने वेतन और कपड़े पर ही होता है। साज-सामान पर होने वाला

खर्चा तो बहुत ही कम होता है। इसलिए हमारे देश के लिए यह और भी ज्यादा जरूरी हो जाता है कि साज सामान पर होने वाले खर्चे का पूरा-पूरा लाभ उठाया जाय। यह बात बिलकुल साफ है कि प्रतिरक्षा में यदि हरसंभव किफायतसारी करनी है तो यह केवल प्रतिरक्षा अनुसंधान द्वारा ही संभव है।

विकसित देशों में प्रतिरक्षा पर होने वाले कुल खर्च का काफी हिस्सा विकास और अनुसंधान पर खर्च होता है। या तो अनुसंधान के बजटों को देखने से ऐसा मालूम होता है कि इस क्षेत्र में कोई ज्यादा उपलब्धियां नहीं हुई लेकिन इस बात का जरूर सबूत मिलता है कि अनुसंधान के लिए जोर शोर से प्रयत्न हो रहे हैं। जहां तक हमारे देश का सवाल है प्रतिरक्षा बजट के 10 प्रतिशत को अनुसंधान पर खर्च करने का सवाल ही नहीं उठता क्योंकि हमारे देश की आर्थिक स्थिति इतनी अच्छी नहीं है। हां इस बात की आवश्यकता तो है ही कि हम प्रयत्नों में तनिक भी ढिलाई न छोड़ें और-जोर से अपनी कोशिशों में लग जाएं और यह तभी आशा की जा सकती है कि प्रतिरक्षा अर्थ व्यवस्था पर अनुसंधान का स्वस्थ प्रभाव पड़ेगा। यह बात याद रखने योग्य है कि प्रतिरक्षा अनुसंधान से देश में व्यावहारिक अनुसंधान को प्रोत्साहन और बल मिलता है। प्रतिरक्षा में बहुत सारे ऐसे काम

वाला खर्चा एक प्रतिशत न होकर राष्ट्रीय आय का 0·1 प्रतिशत है। जिन देशों की प्रति व्यक्ति आय अमेरिका की प्रति व्यक्ति आय से 100 वां हिस्सा है वहां अनुसंधान पर होने वाला खर्चा 01 प्रतिशत है। उदाहरण के लिए अमरिका का प्रतिरक्षा अनुसंधान और विकास पर होने वाला खर्चा प्रति वर्ष तीन अरब डालर है और हर साल इस खर्चे में 5 से 10 प्रतिशत तक बढ़ोतरी होती है (इस प्रकार प्रति वर्ष पिछले वर्ष की अपेक्षा 100 करोड़ रुपये से ज्यादा खर्चा बढ़ जाता है।) ब्रिटेन में प्रतिरक्षा में अनुसंधान पर होने वाला खर्चा प्रति वर्ष 20 करोड़ पौंड है। इस सम्बन्ध में एक दिलचस्प बात यह है कि ब्रिटेन में भी जवान का औसत खर्चा 7000 पौंड सालाना से ज्यादा है और कुछ ही सालों में इसके 3000 पौंड होने की सम्भावना है। यह खर्चा सं० रा० अमरीका में इससे तीन गुना है। इस खर्चे में से अधिकांश भाग शस्त्र-अस्त्रों के आधुनिकीकरण पर खर्च होता है। एक दिलचस्प बात यह है कि इन देशों में प्रति (अनुसंधान) वैज्ञानिक पर होने वाला खर्चा करीब-करीब उतना ही है जितना कि एक सैनिक पर। हमारे देश में हर जवान पर होने वाला खर्चा ब्रिटेन का एक चौथाई है और यह सब खर्चा हमारे यहां के सैनिक के प्रशिक्षण, साज वेतन और भत्ते पर ही होता है। साज-सामान पर होने वाला

खर्च तो बहुत ही कम होता है। इसलिए हमारे देश के लिए यह और भी ज्यादा जरूरी हो जाता है कि साज सामान पर होने वाले खर्चों का पूरा-पूरा लाभ उठाया जाय। यह बात बिलकुल साफ है कि प्रतिरक्षा में यदि दरअसल किफायतसारी करनी है तो वह केवल प्रतिरक्षा अनुसंधान द्वारा ही संभव है।

ब्रिटेन जैसे देशों में प्रतिरक्षा पर होने वाले कुल खर्चे का बड़ा हिस्सा विकास और अनुसंधान पर खर्च होता है। वैसे तो अनुसंधान के बजटों को देखने से ऐसा मालूम होता है कि इस क्षेत्र में कोई ज्यादा उपलब्धियां नहीं हुई लेकिन इस बात का जरूर सबूत मिलता है कि अनुसंधान के कितने जोर शोर से प्रयत्न हो रहे हैं। जहां तक हमारे देश का सवाल है प्रतिरक्षा बजट के 10 प्रतिशत को अनुसंधान पर खर्च करने का सवाल ही नहीं उठता क्योंकि हमारे देश की आर्थिक स्थिति इतनी अच्छी नहीं है। हां इस बात की आवश्यकता तो है ही कि हम प्रयत्नों में तनिक भी ढिलाई न छोड़ें जोर-शोर से अपनी कोशिशों में लग जाएं और यह तभी आशा की जा सकती है कि प्रतिरक्षा अर्थ व्यवस्था पर अनुसंधान का स्वस्थ प्रभाव पड़ेगा। यह बात याद रखने योग्य है कि प्रतिरक्षा अनुसंधान से देश में व्यावहारिक अनुसंधान को प्रोत्साहन और बल मिलता है। प्रतिरक्षा में बहुत सारे ऐसे काम

वाला खर्च एक प्रतिशत न होकर राष्ट्रीय आय का 0 1 प्रतिशत है। जिन देशों की प्रति व्यक्ति आय अमेरिका की प्रति व्यक्ति आय का 100 वां हिस्सा है वहां अनुसंधान पर होने वाला खर्च 01 प्रतिशत है। उदाहरण के लिए अमरिका का प्रतिरक्षा अनुसंधान और विकास पर होने वाला खर्च प्रति वर्ष तीस अरब डालर है और हर साल इस खर्च में 5 से 10 प्रतिशत तक बढ़ोतरी होती है (इस प्रकार प्रति वर्ष पिछले वर्ष की अपेक्षा 100 करोड़ रुपये से ज्यादा खर्च बढ़ जाता है।) ब्रिटेन में प्रतिरक्षा में अनुसंधान पर होने वाला खर्च प्रति वर्ष 20 करोड़ पौंड है। इस सम्बन्ध में एक दिलचस्प बात यह है कि ब्रिटेन में फौजी जवान का औसत खर्च 2000 पौंड सालाना से ज्यादा है और कुछ ही सालों में इसके 3000 पौंड होने की सम्भावना है। यह खर्च सं० रा० अमरीका में इससे तीन गुना है। इस खर्चे में से अधिकांश भाग साज-सज्जा के आधुनिकीकरण पर खर्च होता है। एक दिलचस्प बात यह है कि इन देशों में प्रति (अनुसंधान) वैज्ञानिक पर होने वाला खर्च करीब-करीब उतना ही है जितना कि एक सैनिक पर। हमारे देश में हर जवान पर होने वाला खर्च ब्रिटेन का एक चौथाई है और यह सब खर्च हमारे यहां के सैनिक के अतिरिक्त खाने वेतन और कपड़े पर ही होता है। साज-सामान पर होने वाला

खर्चा तो बहुत ही कम होता है। इसलिए हमारे देश के लिए यह और भी ज्यादा जरूरी हो जाता है कि साज सामान पर होने वाले खर्च का पूरा-पूरा लाभ उठाया जाए। यह बात बिलकुल साफ है कि प्रतिरक्षा में यदि दरअसल किफायतसारी करनी है तो वह केवल प्रतिरक्षा अनुसंधान द्वारा ही संभव है।

ब्रिटेन जैसे देशों में प्रतिरक्षा पर होने वाले कुल खर्चे का दसवां हिस्सा विकास और अनुसंधान पर खर्च होता है। यों तो अनुसंधान के बजटों को देखने से ऐसा मालूम होता है कि इस क्षेत्र में कोई ज्यादा उपलब्धियां नहीं हुई लेकिन इस बात का जरूर सबूत मिलता है कि अनुसंधान के लिये जोर शोर से प्रयत्न हो रहे हैं। जहां तक हमारे देश का सवाल है प्रतिरक्षा बजट के 10 प्रतिशत को अनुसंधान पर खर्च करने का सवाल ही नहीं उठता क्योंकि हमारे देश की आर्थिक स्थिति इतनी अच्छी नहीं है। हां इस बात की आवश्यकता तो है ही कि हम प्रयत्नों में तनिक भी ढिलाई न छोड़ें और जोर-शोर से अपनी कोशिशों में लग जाएं और यह तभी आशा की जा सकती है कि प्रतिरक्षा तंत्र व्यवस्था पर अनुसंधान का स्वस्थ प्रभाव पड़ेगा। यह बात याद रखने योग्य है कि प्रतिरक्षा अनुसंधान से देश में व्यावहारिक अनुसंधान को प्रोत्साहन और बल मिलता है। प्रतिरक्षा में बहुत सारे ऐसे काम

होते हैं जिनका इस्तेमाल असैनिक कार्यों में किसी न किसी रूप में होता रहता है और इसी तरह असैनिक क्षेत्र में होने वाले अनुसंधानों का सैनिक क्षेत्र में इस्तेमाल होता रहा है। इसलिये प्रयोगशालाएं इलेक्ट्रानिक्स तथा राडार और विमानन पर विशेष संस्थान स्थापित किए जाएं भले ही वे बहुत छोटे पैमाने पर हों। प्रयोगशालाओं का बड़ा बनाना होगा और वैज्ञानिक कर्मचारियों की संख्या बढ़ानी होगी। पर इनके करने से भी तब तक कोई फायदा नहीं होगा जब तक कि प्रयोगशालाओं में इस प्रकार का वातावरण पैदा नहीं होगा जिससे अनुसंधान को प्रेरणा मिले और जब तक कि ये प्रयोगशालायें वैज्ञानिक काम के लिए 'व्यक्तिगत त्याग और उत्सर्ग के ज्ञान मन्दिर' न बनें।

आणविक अस्त्र

प्रश्न में यहां वर्तमान युग की सबसे बड़ी और महत्व पूर्ण समस्या का उल्लेख करना आवश्यक है और यह समस्या है आणविक अस्त्रों की। मनुष्य के इतिहास में पहले पहल एक ऐसे विनाशकारी और महा विध्वंसक अस्त्र का आविष्कार हुआ है जिसका प्रभाव हजारों मीलों तक पड़ता है। इतिहास के सभी युगों में राजनीतिक शक्तियों का आधार और प्रभाव इस बात पर निर्भर रहा है कि

उसके पास कितनी दूर तक मार करने वाले विध्वंसक हथियार हैं और अब तो ऐसे-ऐसे विध्वंसक हथियार बन गये हैं कि उनकी मार का क्षेत्र सारी दुनिया ही बन गई है। इसका स्पष्ट उदाहरण स्पुतनिक है।

इन बातों से हम एक ही परिणाम पर पहुँचते हैं और आइंस्टीन के शब्दों को दोहराना चाहते हैं—"या तो सारी दुनिया एक हो या फिर दुनिया रहे ही न।" आज के मेगाटन बम विनाश प्रक्षेपास्त्र और मानव सभ्यता का बहुत समय तक सहअस्तित्व नहीं रह सकता।

*भारत प्रतिरक्षा विज्ञान सम्मेलन के मंच पर दिये गये भाषण का रूपान्तर।

लेकिन जब राजनीति शिक्षा में या शिक्षा राजनीति की सीमाओं में प्रवेश करता है तो निश्चय ही उसका रूप बिगड़ जाता है।

औसत छात्र की प्रतिभा बढ़े

हमारे सामने और विशेषकर वर्तमान संकट को देखते हुए शिक्षा के क्षेत्र में सबसे बड़ी और मूलभूत समस्या जिस पर सम्पूर्ण विकास आधारित है वह है कि हमारे विद्यार्थियों और शिक्षा के स्तर को किस तरह ऊँचा उठाया जाय कि जिससे औसत छात्र की प्रतिभा ऊँची उठे और अधिक से अधिक संख्या में छात्र उत्तीर्ण हों। आज फेल होने वाले विद्यार्थियों की दशा यह है कि 1960 में देश में जो परीक्षायें हुई थीं उनमें बी॰ए॰ की परीक्षाओं में प्रवेश होने वाले विद्यार्थियों का 57 प्रतिशत बी॰ काम॰ में 50·6 प्रतिशत, बी॰ एस-सी॰ में 49 प्रतिशत बी॰ एस-सी॰ (इंजी॰) में 31·1 प्रतिशत बी॰ एस-सी॰ (एग्री॰) में 22·2 प्रतिशत बी॰ एस-सी॰ (वैटी॰) में 31·6 प्रतिशत बी॰ एस-सी॰ (टैक्नो॰) में 15·7 प्रतिशत और एम॰ बी॰ बी॰ एस॰ में 46·6 प्रतिशत फेल हुए थे। एम॰ ए॰ में 25·1 एम॰ एस-सी॰ में 21 और एम॰ काम॰ में 10·9 प्रतिशत विद्यार्थी फेल हुए। इससे जाहिर है कि अन्य बातों के अतिरिक्त

हमारी शिक्षा पद्धति में कहीं न कहीं कोई बुनियादी दोष है। आइये ज़रा इन्हीं परीक्षाओं की तुलना इंग्लैण्ड से करें। अक्तूबर 1957 में वहाँ जितने विद्यार्थी स्नातक पाठ्यक्रम (डिग्री कोर्स) में प्रवेश हुए उनमें 85.0 प्रतिशत परीक्षाओं में सफल हुए। इनमें 76.8 प्रतिशत ने एक बार में ही परीक्षा पास करली और जो 14.2 प्रतिशत विद्यार्थी फैल हुए थे उनमें से 11.8 प्रतिशत विद्यार्थी वास्तव में अनुत्तीर्ण नहीं हुए थे वरन् उन्होंने बीच में ही इस पढ़ाई को छोड़कर कोई दूसरा पाठ्यक्रम ले लिया था, या किसी शिक्षण संस्था में चले गये थे और 0.1 प्रतिशत छात्रों को अनुशासनात्मक कार्यवाही के कारण परीक्षा छोड़नी पड़ी थी (पर उन विद्यार्थियों में से जिनके पास औषधि विज्ञान दन्त विज्ञान और पशुपालन विज्ञान था उनमें से 29.9 प्रतिशत को उत्तीर्ण होने के लिए एक से अधिक बार परीक्षा देनी पड़ी।)

इस तरह हम देखते हैं कि जब तक अनुत्तीर्ण छात्रों की समस्या को उचित ढंग से हल नहीं किया जायेगा तब तक विशेष रूप से विज्ञान की कक्षाओं में प्रवेश पाने वाले विद्यार्थियों की संख्या उत्तीर्ण होने वाले विद्यार्थियों की तुलना में बढ़ती ही जायेगी। इस तरह विज्ञान की शिक्षा पर जितना व्यय होगा तुलनात्मक दृष्टि से उसमें उतना लाभ नहीं होगा। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि

उत्तीर्ण होने वाले स्नातकों की संख्या शिक्षण पद्धति की क्षमता और प्रवेश पाने वाले विद्यार्थियों का गुणनफल होती है। शिक्षण पद्धति में सुधार करके अच्छी और सस्ती पाठ्य पुस्तकें तैयार करके—जो सभी विद्यार्थियों को उपलब्ध हो सकें छुट्टियों को कम करके शिक्षण कार्यकाल बढ़ाकर, और शिक्षक और विद्यार्थियों के परस्पर सम्पर्क को और अधिक घनिष्ठ बनाकर आज फेल होने वाले विद्यार्थियों की संख्या को काफी हद तक कम करना संभव है। इसके लिए हमें तुरन्त ही कुछ विशेष और प्रभावपूर्ण कदम उठाने होंगे। अच्छे शिक्षकों को अधिक संख्या में रखना होगा। अच्छी और ऊँचे स्तर की पाठ्य पुस्तकों को सस्ते दामों में उपलब्ध कराना होगा। पुस्तकालयों में पुस्तकों की और बैठने की ऐसी व्यवस्था करनी होगी जिससे प्रत्येक विद्यार्थी को उनका इस्तेमाल करने का समान अवसर मिल सके। शिक्षण संस्थाओं के आसपास ऐसे अध्ययनगृह बनाने होंगे जिनमें छात्रावासों में न रहने वाले स्थानीय विद्यार्थियों को भी दिन में पढ़ने के लिए आवश्यक वातावरण उपलब्ध हो सके और इसी तरह के ऐसे अनेक कदम उठाने होंगे जिनसे विद्यार्थियों की अध्ययन क्षमता और अधिक बढ़ सके। यदि ये कदम उठा लिए गये तो न केवल फेल होने वाले छात्रों की संख्या में कमी होगी वरन् विद्यार्थियों का शैक्षिक स्तर भी ऊँचा

होगा और विश्वविद्यालयों का सामान्य वातावरण भी अच्छा बन जायेगा।

फेल होने का कारण

हमारे देश में भारी संख्या में विद्यार्थियों के फेल होने के अनेक जटिल कारण हैं किन्तु उनमें से एक सबसे बड़ा कारण यह है कि हमारे देश के अधिकांश विद्यार्थियों को घर पर पढ़ने के लिए आवश्यक वातावरण उपलब्ध नहीं होता। उनमें से अनेक को पढ़ने के लिए घर में ऐसा स्थान भी नहीं मिल पाता है जहां पर वे एकाग्रचित होकर अपनी पढ़ाई कर सकें। साथ ही उन्हें अनेक घरेलू कठिनाइयां चिन्तायें और आर्थिक समस्यायें घेरे रहती हैं। आमतौर पर उन को विश्वविद्यालय तक पहुंचने के लिए अपने घर से काफी फासला तय करना पड़ता है और इस तरह उनका काफी समय बरबाद हो जाता है। फिर हमारे देश के अधिकांश विद्यार्थी ऐसे घरों से आते हैं जिनमें अध्ययन अध्यापन की विशेष पृष्ठभूमि नहीं रहती क्योंकि आज भी हमारे देश की जनसंख्या के 80 प्रतिशत लोगों की पारिवारिक आमदनी 100 रुपए प्रति माह से भी कम है। इसलिए छात्रावासों के अतिरिक्त यह आवश्यक है कि प्रत्येक शिक्षण संस्था के साथ ऐसे अध्ययन गृह बनाये जायें जिनमें घर से आने वाले स्थानीय विद्यार्थियों को पढ़ने का आवश्यक

वातावरण उपलब्ध हो सके और साथ ही वहाँ पर उन्हें सस्ते दामों में भोजन मिल सके। इसके अतिरिक्त पुस्तकालयों के वाचनालयों को बढ़ाने की विशेषरूप से आवश्यकता है। सच तो यह है कि पुस्तकालय विद्यार्थियों के लिए आकर्षण के ऐसे केन्द्र बन जाने चाहिए जिनसे उनका मन कभी ऊबे नहीं।

शिक्षा समन्वित हो

वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए और हमारी विकासोन्मुख अर्थव्यवस्था के कारण यह आवश्यक हो गया है कि शिक्षा को जहाँ तक हो सके उद्योग, कृषि और दूसरे धन्धों के साथ उत्पादन की दृष्टि से समन्वित किया जाए। इससे न केवल शिक्षा विशेष रूप से विज्ञान और टैक्नालौजी की शिक्षा अधिक उपयोगी बनेगी वरन् कुछ विद्यार्थियों के लिए यह भी सम्भव हो जायेगा कि वे अपने शिक्षा व्यय का आंशिक भाग स्वयं कमा सकें। इसके साथ ही सभी विज्ञान संस्थाओं की प्रयोगशालाओं को ऐसे उपकरणों से सुसज्जित होना चाहिए जो शिक्षा की दृष्टि से वास्तव में महत्त्वपूर्ण और उपयोगी हों। अर्न्तराष्ट्रीय बड़े और छोटे मँहगे उपकरण जो आमतौर पर विदेशों से मँगाए जाते हैं बेकार हैं। व्यावहारिक उपयोग में आने वाले उपकरणों का कम लागत और सरलता के

लिए इन संस्थाओं में छोटे-छोटे कारखाने भी होने चाहिए जिनमें काम करके विद्यार्थी अपने खाली समय में कुछ कमा सकें।

इस तरह विश्वविद्यालय और दूसरी शिक्षण संस्थाओं को विचारकों, सत्य चिन्तकों और मनीषियों का निवास स्थान बनाना होगा। यदि शिक्षण संस्थायें ऐसी नहीं बनती हैं तो भले ही वे अन्य बातों में कितनी ही शानदार क्यों न हों वे वास्तविक रूप से विद्या के आगार नहीं कहे जा सकते। विश्वविद्यालयों का यह मिशन होना चाहिए कि वे समाज को ऐसे प्रतिभावान् योग्य और सजग नर नारी प्रदान कर सकें जो कला विज्ञान टैक्नालोजी औषधि कृषि और दूसरे क्षेत्रों में प्रतिष्ठित हों और जिनमें त्याग और तपस्या की भावना सबसे अधिक हो। विश्वविद्यालय मानवता सहनशीलता, विवेक सद्भावना और सत्यान्वेषण के प्रतीक हैं। वे मनुष्य समाज को अन्धकार से प्रकाश की ओर, असत से सत की ओर व अज्ञान से ज्ञान की ओर ले जाने वाले हैं।

अनुसंधान—निष्ठ अध्यापन

इसलिए विश्वविद्यालयों की विशेष शक्ति इस तथ्य में निहित है कि वहाँ शोधकर्ता, अध्यापक और अनुसंधान तीनों एक स्थान पर मिलते हैं। अतएव विश्वविद्या

संस्थाओं में अध्यापन और अनुसंधान का प्रतिस्पर्धी नहीं वरन् सहगामी और पूरक होना चाहिए। जर्मन विश्वविद्यालयों के पिछले 100 वर्षों का अनुभव यह बताता है कि अध्यापन और अनुसंधान को साथ-साथ चलाना निश्चित रूप से लाभदायक होता है। जैसा कि सर क्रिस्टोफर इनगोल्ड ने अभी हाल में ("नेचर" के 15 सितम्बर 1962 के अंक में) कहा है यदि विज्ञान को सजीव रखना है तो उसमें अध्यापन और अनुसंधान को अलग नहीं किया जा सकता क्योंकि जो सबसे अच्छे अनुसंधानकर्ता होते हैं वही सबसे उत्तम शिक्षक भी होते हैं और उनसे ही विद्यार्थियों को सबसे अधिक प्रेरणा मिलती है। आज हमें ऐसे ही अनुसंधानशील अध्यापकों की आवश्यकता है जो आने वाली पीढ़ी का भली भाँति निर्माण कर सकें।

यह स्वाभाविक बात लगती है कि इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जो विज्ञान के प्रमुख विषय विद्यार्थियों को पढ़ाए जाते हैं उनसे सम्बन्धित कोई भी अनुसंधान शाखा अछूती नहीं रहनी चाहिए क्योंकि इन संस्थाओं में वैज्ञानिक परम्परा को सुरक्षित नहीं रखा जा सकता और वहाँ पर ऐसे प्रमाण और उदाहरण नहीं मिल सकते जो आने वाली पीढ़ियों को उनके निर्माण काम में प्रेरणा और मार्गदर्शन दे सकें।

शिक्षा के राष्ट्रीय मान

अध्ययन के क्षेत्र विशेष रूप से विश्वविद्यालय स्तर पर हमको शिक्षा के राष्ट्रीय मान स्थापित करने होंगे। इन मूल्यों का स्थापित करना कोई आसान काम नहीं क्योंकि इनका सम्बन्ध सद्विचारों से है। आज तो अनेक अविकसित देशों में भी शिक्षण संस्थाओं की ऐसी इमारतें और उपकरण दिखाई पड़ते हैं जिनकी तुलना आधुनिकतम देशों की इमारतों से की जा सकती है। इसका कारण यही है कि ऊँचे विचारों की अपेक्षा ऊँची इमारतों को बनाना अधिक आसान है, विशेष रूप से उस दशा में जब कि इसमें लगा धन बिना प्रयास ही कहीं से प्राप्त हो गया हो।

किसी विश्वविद्यालय को न उसकी इमारत न उपकरण न पुस्तकालय और न उसके शिक्षक महान बनाते हैं। वास्तव में कोई विश्वविद्यालय उन विचारों से बनता है जिनका वहाँ सृजन होता है और जो वहाँ की मिट्टी में पनपते हैं। इसलिए विश्वविद्यालय महान् और ऊँचे विचारों को जन्म देने वाले स्थान होने चाहिए। ये ऐसे केन्द्र होने चाहिए जहाँ पर सब ऐसे लोग रहने को लालायित हों जो विचारों के संसार में रहते हैं। किन्तु विश्वविद्यालयों में ऐसी परिस्थिति का निर्माण तब तक

असम्भव है जब तक उनका नियन्त्रण और प्रशासन ऐसे लोगों के हाथों में है जो विचारों से डरते हैं। इसके अनुसार यह भी होने है कि विश्वविद्यालयों में सुन्दर और नवीन विचारों को प्रोत्साहन और विशेष स्थान मिलना चाहिए।

ध्वंस का विराट रूप

परमाणु युग और ध्वंस के विराट स्वयं-चालित और स्वयं-निर्देशित अस्त्रों के अभाव में आज की अन्तर्राष्ट्रीय समस्या और भी जटिल हो गया है क्योंकि आज परमाणु विस्फोट मानव सभ्यता और मनुष्य जीवन को ही चुनौती दे रहे हैं। इस विचार को लोगों तक पहुँचाने में हमारी शिक्षण संस्थायें बड़ी मदद कर सकती हैं। आज मानवता परमाणु विस्फोट रूपी ज्वालामुखी और [illegible] के मुँह तक पहुँच चुकी है और परमाणु शक्ति के ज्ञान अथवा असमान गलत इस्तेमाल से सम्पूर्ण मानव जाति के विनष्ट होने और हमारी सभ्यता के विलुप्त होने का पूरा-पूरा खतरा पैदा हो गया है।

इस सम्बन्ध में हम यह बताना अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि अब हम ज्ञान को धारा में नहीं रखना चाहिए। परमाणु विस्फोट के कारण अभूतपूर्व स्थिति उत्पन्न पैदा हो गयी है क्योंकि वैज्ञानिक व औद्योगिक ज्ञान और राजनीतिक अपरिपक्वता तथा नैतिक मूल्यों

के बीच पड़ी हुई दरार तेजी से बढ़ती जा रही है जिसके कारण विज्ञान और अध्यात्म परमाणु और अहिंसा का संतुलन गड़बड़ा गया है।

परमाणु विस्फोट की इस पृष्ठभूमि में शिक्षण संस्थायें विज्ञान टैक्निकल शिक्षा ललित कलाओं के बीच असंतुलन को दूर करने में महत्त्वपूर्ण योगदान कर सकती हैं। साथ ही वे ज्ञान और विवेक तथा बुद्धिमत्ता के बीच पड़ी हुई खाई को पाटने में भी अपना आंशिक योग दे सकती हैं। यह तभी हो सकता है जब कि हमारी शिक्षण संस्थाएं ऐसी बन सकें जहाँ पर प्रत्येक विद्यार्थी को जिज्ञासा व्यक्त करने की सुविधा हो प्रत्येक विचार को विवेक की तुला पर तौलने और अपनी शंका का समाधान करने की स्वतन्त्रता हो जहाँ पर ज्ञान विवेक और सहनशीलता एक ही वृक्ष की शाखायें हों और जहाँ पर न केवल विद्वता जिज्ञासापरायणता और चारित्र्य का सम्मान किया जाता हो वरन् जहाँ इन गुणों को विकसित करने की व्यवस्था भी हो।

वर्तमान संकट के इस समय में आज राष्ट्र को पहले से भी अधिक श्रेष्ठ प्रतिभावान् और साम्य व्यक्तियों की बड़ी से बड़ी संख्या में आवश्यकता है जो विभिन्न विषयों में विशेष रूप से विज्ञान टैक्नोलोजी और औषधि विज्ञान में प्रशिक्षण प्राप्त हों। यह हमारे देश के सभी कालेजों

और विश्वविद्यालयों के लिए एक चुनौती है और इसका मुकाबला हम तभी कर सकते हैं जब लगातार गम्भीरता पूर्वक कठोर श्रम किया जाय। विद्यार्थियों की क्षमता को ऊँचा उठाया जाय और अनुत्तीर्ण होने वाले विद्यार्थियों की संख्या को कम किया जाय। यदि हमारे विद्यार्थी शिक्षक और शिक्षण संस्थायें ऐसा कर सकती हैं तो वे आज की विकट परिस्थिति में देश की शक्ति और समृद्धि को बढ़ाने में प्रत्यक्ष योग दे सकती हैं।



7

मानव और परमाणु विस्फोट

'हम आप के सामने वर्तमान युग की सबसे उलझन भरी उस समस्या को पेश करते हैं जो दुर्दमनीय भयानक और अनिवार्य है और जिससे बचा नहीं जा सकता। प्रश्न यह है कि क्या हम सदा के लिए युद्ध बन्द करने की घोषणा कर सकते हैं या हम मनुष्य जाति को समूल नष्ट करना चाहते हैं? यदि हम सदा के लिए युद्ध से विमुख हो जाते हैं तो हम एक ऐसा समाज निर्माण कर सकते हैं जिसमें आनन्द ज्ञान और बुद्धि की सतत प्रगति हो सकती है। तो क्या हम इस स्वर्गीय आनन्द के बदले विनाशक मृत्यु को इसलिए चाहते हैं, क्योंकि हम अपने झगड़े समाप्त नहीं कर सकते। हम आपसे मनुष्य होने के नाते मनुष्यता के नाम पर यह निवेदन करते हैं कि आप सब कुछ भूल कर केवल अपनी मानवता को याद रखें। यदि आप यह कर सकते हैं तो निश्चय ही नये स्वर्ग के लिए रास्ता खुला है। किन्तु यदि आपको यह मंजूर नहीं है तो आप के सामने मानव मात्र की मृत्यु का संकट उपस्थित है।'

अनुसंधान के कारणों की खोज करके उन को खत्म करना अनिवार्य हो गया है। क्योंकि जिस तेजी से संसार के बड़े राष्ट्रों में परमाणु अस्त्रों की होड़ बढ़ रही है यदि इस की गति इतनी ही रही तो मनुष्य जाति के विनाश होना का निश्चित खतरा है। यह होड़ 16 जुलाई 1945 को अमरीका द्वारा प्रथम परमाणु विस्फोट के परीक्षण से शुरू हुई थी। 6 तथा 9 अगस्त 1945 को अमरीका द्वारा क्रमशः जापान के हिरोशिमा और नागासाकी नगरों पर जो परमाणु बम्ब छोड़े गये थे उन से परमाणु में निहित शक्ति के विनाशकारी रूप का दर्शन हुआ। उसके बाद ही रूस ने भी इस क्षेत्र में प्रवेश किया और 29 अगस्त 1949 को उसने अपना पहला परमाणु विस्फोट किया। रूस और अमरीका की इस होड़ में ब्रिटेन भी पीछे नहीं रहना चाहता था इसलिए उसने भी अक्तूबर, 1952 में अपना पहला परमाणु विस्फोट किया और फिर इसी क्रम में फ्रांस ने फरवरी 1960 में अपना परमाणु बम्ब का परीक्षण किया।

यह होड़ केवल परमाणु बम्ब तक ही सीमित नहीं है वरन् तीन बड़े राष्ट्रों में हाइड्रोजन बम्ब को ले कर उनमें भी मुकाबले होड़ लग गई। अमरीका ने नवम्बर, 1952 में, रूस ने अगस्त 1953 में और इंग्लैण्ड ने मई, 1957 में हाइड्रोजन बम्ब का प्रथम परीक्षण किया।

इस बीच में एक अच्छी बात यह हुई कि अक्तूबर 1958 से अगस्त 1961 तक स्वेच्छा से अमरीका और रूस ने परमाणु अस्त्रों का परीक्षण बन्द कर दिया। किन्तु सितम्बर-नवम्बर 1961 में रूस ने अपने परीक्षण फिर शुरू कर दिए। 30 अक्तूबर 1961 को संसार का सबसे बड़ा परमाणु विस्फोट हुआ। यह शायद लगभग 100 मैगाटन का था किन्तु इसको 60 मैगाटन का ही बताया गया था। इसके प्रतिक्रिया स्वरूप अमरीका ने 25 अप्रैल 1962 से अपने परमाणु विस्फोट फिर शुरू किए जिनमें क्लीन बम्ब (जिनके विस्फोट होने के बाद वातावरण में कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ पाता) और न्यूट्रोन बम्ब भी शामिल हैं।

परमाणु विस्फोट की भयानक शक्ति

परमाणु विस्फोट की भयानक शक्ति का कुछ अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि एक मैगाटन से अधिक के परमाणु विस्फोट (जैसा कि अमरीका ने अपने मार्च 1954 के परीक्षण में और रूस ने नवम्बर, 1956 में इस्तेमाल किए थे) से इतनी विस्फोटक शक्ति मुक्त होती है जितनी आज तक के इतिहास में छोड़े गए कुल विस्फोटों से पैदा हुई है। इसमें द्वितीय महायुद्ध में हुए विस्फोट भी शामिल हैं। यदि एक मैगाटन शक्ति के

परमाणु बम्ब से मुक्त शक्ति को टी एन० टी० या बारूद जैसे रासायनिक विस्फोटों से प्राप्त किया जाये तो इन विस्फोट पदार्थों का मूल्य ही केवल 2000-3000 करोड़ रुपए होगा। इसमें विस्फोट को लाने ले जाने का खर्चा शामिल नहीं किया गया है। इन विस्फोटक पदार्थों की मात्रा का एक अन्दाज इस बात से भी लगाया जा सकता है कि एक मेगाटन बम्ब की विस्फोटक शक्ति के तुल्यांक बारूद या टी एन टी० को यदि मालगाड़ी के डिब्बों में भरा जाय तो इन विस्फोट पदार्थों की कुल मात्रा इतनी अधिक होगी कि इस सब को एक मालगाड़ी में भरने के लिए इतने डिब्बों की जरूरत पड़ेगी कि यदि इन डिब्बों को एक के बाद एक लगाया जाय तो उसकी लम्बाई उतनी होगी जितनी कश्मीर से कन्याकुमारी तक की है। फिर इन रासायनिक विस्फोटों की तुलना में परमाणु विभाजक बम्बों को बनाना भी सस्ता पड़ता है। उदाहरण के लिए एक हाइड्रोजन बम्ब की कीमत केवल कुछ करोड़ रुपए ही आती है। इसका कारण यह है कि इन बम्बों को बनाने के लिए अब ऐसी विधियां विकसित कर ली गयी हैं जिनमें महंगे यूरेनियम 235 के स्थान पर सस्ते यूरेनियम 238 का इस्तेमाल किया जाता है।

सचाई तो यह है कि परमाणु शक्ति के इस विराट रूप की कल्पना इसको बनाने वाले देश तक नहीं कर

मक थे जैसा कि 1956 में प्रकाशित श्री ट्रूमैन के संस्मरणों से पता चलता है। वे इसमें कहते हैं कि 1945 में एक ऐसी अद्भुत घटना घटी जो निकट भविष्य में शेष संसार के साथ हमारे सम्बन्धों में क्रांति पैदा करने वाली थी और जिसके कारण मनुष्य जाति एक ऐसे युग में पदार्पण करने वाली थी जिसके परिणाम और जिससे पैदा होने वाली समस्याओं की हम कल्पना भी नहीं कर सकते। यह अद्भुत घटना परमाणु बम्ब था।

इसी प्रकार श्री किसिंजर अपनी पुस्तक "न्यूक्लीयर वेपन्स एण्ड फौरन पौलिसी" (परमाणु अस्त्र और विदेश नीति) में प्रथम रूसी परमाणु विस्फोट परीक्षण की चर्चा करते हुए कहते हैं 'अन्तर्राष्ट्रीय गुटों की राजनैतिक शक्ति सन्तुलन पर जो प्रभाव रूस द्वारा परमाणु बम्ब बनाने की सफलता का पड़ा है उसके कारण परमाणु अस्त्रों के क्षेत्र में हमारा एकाधिकार खत्म हो गया है। यदि रूस द्वारा सम्पूर्ण पश्चिमी यूरोप भी कब्जे में कर लिया जाता तो भी शक्ति सन्तुलन की दृष्टि से हमारी उतनी हानि न होती।"

विज्ञान का ताण्डव नृत्य

पिछले कुछ वर्षों में इस विराट शक्ति के द्वारा नाना विज्ञान के अनुसंधान सम्पन्न हुए हैं किन्तु केवल एक हान्का-

यह बम्ब ही विनाश का इतना विराट ताण्डव उपस्थित करता है कि इसके द्वारा होने वाली मृत्यु संख्या को आसानी से लिखने के लिए हमें अब अपने गिनने की इकाई ही दूसरी बनानी पड़ी है। इस इकाई को मैगा-डैथ कहते हैं जो 10 लाख मृत्यों के बराबर होती है। परमाणु बम्ब से केवल 10 वर्गमील क्षेत्र का ही सम्पूर्ण विनाश होता था किन्तु हाइड्रोजन बम्ब से निकली केवल आग और लपटें ही एक हजार वर्गमील क्षेत्र को नष्ट कर देती है। इसके अतिरिक्त 10 हजार वर्गमील का क्षेत्र इससे निकले विकिरण पदार्थों द्वारा नष्ट हो जाता है। इस तरह एक हाइड्रोजन बम्ब से निकली केवल लपटें और गर्मी ही संसार के बड़े से बड़े नगर को नष्ट करने के लिए काफी है।

उपरोक्त आधार पर परमाणु युद्ध में यमराज का कैसा विकराल ताण्डव होगा इसका भी कुछ अनुमान लगाया गया है। उदाहरण के लिए यदि 10 हजार मैगाटन के परमाणु बम्बों से अमरीका पर हमला किया जाये तो उसकी पूर्ण जनसंख्या का केवल दसवां भाग ही जीवित रह सकेगा तथा 90 प्रतिशत मारा जायगा। स्मरण रहे कि इस अनुमान में उन मृत्यों की गिनती नहीं की गई है जो परमाणु विस्फोटों से पैदा हुए दूसरे कारणों से होंगी।

भविष्य में परमाणु युद्ध की बीभत्स लीला केवल युद्ध में रत देशों तक ही सीमित नहीं रहेगी वरन् इसके संहार कारी प्रभावों से तटस्थ देश भी नहीं बच सकेंगे। परमाणु अस्त्रों से मुक्त रेडियो सक्रिय पदार्थ और विकिरण तटस्थ देशों के वातावरण में भी घुल मिल जायेंगे जिसके कारण बिना लड़े ही उनकी जनसंख्या का 5 से 10 प्रतिशत भाग नष्ट हो जायेगा।

इन अनुमानों की पुष्टि अमरीकी सैन्य अनुसंधान और विकास विभाग के प्रमुख लैफ्टीनेंट जनरल जेम्स गैविन के उस बयान से भी हो जाती है जो उन्होंने मई 1956 में अमरीका के सिनेट की सिमिंगटन कमेटी के सामने दिया था।

जब लैफ्टीनेंट जनरल गैविन से सिनेटर डफ ने पूछा 'क्या आप कृपा करके मुझे यह बता सकेंगे कि यदि हमें परमाणु युद्ध में शामिल होना पड़े और यदि परमाणु अस्त्रों से सुसज्जित हमारी वायुसेना रूस पर हमला कर दे तो आपके विचार में इन परिस्थितियों में मृत्यु आदि के रूप में हमें कितनी हानि होगी ?"

जनरल गैविन ने इसका उत्तर देते हुए कहा था "मौजूदा अनुमानों के अनुसार इस हमले के कारण मित्र या शत्रु दोनों पक्षों की ही अपार हानि हो सकती है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि हवा का रुख उस समय

फिनलैंड को होगा। यदि हमले के समय हवा की दिशा दक्षिण पूर्व हुई तो इन मुल्कों में से अधिकांश जन के ज़्यादा नागरिक मृत्यु का शिकार बन जायेंगे। यद्यपि पाकिस्तान और यहां तक कि फिलिपाइन्स तक पर भी इसका संहारक प्रभाव पड़ेगा। किन्तु यदि वायु इसके विपरीत दिशा में बहती है तो पश्चिमी योरोप के ज़्यादा नागरिक इन हमलों का शिकार होंगे।

घनघोर रूप से भयानक लड़ाई

इसी घनघोर रूप से भयानक लड़ाई के लिए आज दोनों जिसकी तैयारियों में रत हैं और अनुमान किया जाता है कि अब तक दोनों गुटों ने इतना कच्चा माल इकट्ठा कर लिया है कि जिससे 30 हजार मेगाटन शक्ति के परमाणु बम्ब बनाए जा सकते हैं। यानी आज भी परमाणु शक्ति के संचित कच्चे माल में इतनी संहारक शक्ति मौजूद है जो अमरीका जैसे देशों के 90 प्रतिशत नागरिकों को नष्ट कर सकती है।

इस भयानक स्थिति तक पहुँचने के बाद भी अभी तक संसार के बड़े राष्ट्रों की आँखें नहीं खुली हैं। अभी तो वे निरन्तर परमाणु विस्फोट (रूस द्वारा 10 मेगाटन अमरीका और इंग्लैंड द्वारा 12 मेगाटन और फ्रांस द्वारा एक मेगाटन से कुछ कम) सम्बन्धी परीक्षणों

को करते चले आ रहे हैं। स्मरण रहे कि इसमें अमरीका द्वारा आज कल हो रहे परमाणु परीक्षणों से मुक्त शक्ति शामिल नहीं है जो लगभग 20 मैगाटन के बराबर होगी। परीक्षणों से मुक्त यह शक्ति, द्वितीय महायुद्ध में सभी मार्गों से जितनी विस्फोटक शक्ति मुक्त [redacted] उसका भी सैकड़ों गुना अधिक है। यह हाल तो आज शान्तिकालीन परीक्षणों से ही है पर यदि परमाणु युद्ध हो गया तो क्या हाल होगा ?

भयंकर नतीजे

शान्तिकालीन परीक्षणों से ही इतने भयंकर दुष्परिणाम होने वाले हैं जो मनुष्य जाति की आँखें खोलने के लिए काफी हैं। क्योंकि इन से जो विकिरण शक्ति के रूप में रेडियो सक्रिय स्ट्रोंशियम-90 मुक्त हुआ है वह ही आने वाले 30 वर्षों में दस लाख व्यक्तियों के लिए ल्यूकेमिया नामक अणु रोग के रूप में मृत्यु का कारण बनेगा और 50 हजार लोगों की मृत्यु इससे पैदा हुए हड्डी के फोड़ों के कारण होगी। इसका प्रभाव मृत्यु संख्या पर यह पड़ेगा कि मनुष्य जाति की मृत्यु संख्या प्रति सप्ताह 2 व्यक्ति और बढ़ जायगी।

उपरोक्त आँकड़े इस आधार पर दिये गये हैं कि स्ट्रोंशियम-90 का अर्ध जीवन 30 वर्ष होता है किन्तु

जिस ओर को होगा। यदि हमले के समय हवा की दिशा दक्षिण पूर्व हुई तो इन मुल्कों में से अधिकांश इन के करोड़ों नागरिक मृत्यु का शिकार बन जायेंगे। यद्यपि जापान और यहाँ तक कि फिलिपाइन्स द्वीप तक पर भी इसका घातक प्रभाव पड़ेगा। किन्तु यदि वायु इसके विपरीत दिशा में बहती है तो पश्चिमी योरोप के करोड़ों नागरिक इस हमले का शिकार होंगे।

घनघोर रूप से भयानक लड़ाई

ऐसी घनघोर रूप में भयानक लड़ाई के लिए आज काफी विशाल तैयारियों में रत हैं और अनुमान किया जाता है कि अब तक दोनों गुटों ने इतना कच्चा माल इकट्ठा कर लिया है कि जिससे 30 हजार मैगाटन शक्ति के परमाणु बम बनाये जा सकते हैं। यानी आज की परमाणु शक्ति के संचित कच्चे माल में इतनी घातक शक्ति मौजूद है जो समस्त विश्व के 90 प्रतिशत नागरिकों को नष्ट कर सकती है।

इस भयानक स्थिति तक पहुँचने के बाद भी अभी तक संसार के बड़े राष्ट्रों की आँखें नहीं खुली हैं। अभी तो वे निरन्तर परमाणु विस्फोट (रूस द्वारा 170 मैगाटन अमरीका और इंग्लैण्ड द्वारा 120 मैगाटन और फ्रांस द्वारा एक मैगाटन से कुछ कम) सम्बन्धी परीक्षणों

णों करते चले आ रहे हैं। स्मरण रहे कि इसमें अमरीका द्वारा आज तक हो रहे परमाणु परीक्षणों से मुक्त शक्ति शामिल नहीं है जो लगभग 20 मैगाटन के बराबर होगी। परीक्षणों से मुक्त यह शक्ति द्वितीय महायुद्ध म सभी मोर्चों स जितनी विस्फोटक शक्ति मुक्त हुई उसका भी सैकड़ों गुना अधिक है। यह हाल तो आज शान्तिकालीन परीक्षणों से ही है पर यदि परमाणु युद्ध हो गया तो क्या हाल होगा ?

भयंकर नतीजे

शान्तिकालीन परीक्षणों से ही इतने भयंकर दुष्परिणाम होने वाले हैं जो मनुष्य जाति की आँखें खोलने के लिए काफी हैं। क्योंकि इन से जो विकिरण शक्ति के रूप म रेडियो सक्रिय स्ट्रोंशियम-90 मुक्त हुआ है वह ही आने वाले 30 वर्षों म बड़ नाम व्यक्तियों के लिए ल्यूकेमिया नामक अस्थि-रोग के रूप म मृत्यु का कारण बनेगा और 50 हजार लोगों की मृत्यु इनसे पैदा हुए हड्डी के फोड़ों के कारण होगी। इसका प्रभाव मृत्यु संख्या पर यह पड़ेगा कि मनुष्य जाति की मृत्यु संख्या प्रति सप्ताह 2 व्यक्ति और बढ़ जायेगी।

उपरोक्त आँकड़े इस आधार पर लिए गये हैं कि स्ट्रोंशियम-90 का अर्ध जीवन 30 वर्ष होता है किन्तु

यदि इस सम्भावित विनाश का औसत एक शताब्दी पर फैलाया जाय जो 100 मैगाटन फिशन शक्ति से मुक्त स्ट्रांशियम-90 के कारण पैदा होती है तो विनाश के उपरोक्त आंकड़े दुगने हो जायेंगे।

परीक्षणों से मुक्त रेडियो सक्रिय कार्बन 14 के कारण 30 लाख मृत्यु होंगी जिनमें से 10 प्रतिशत यानी 15 हजार अगली पीढ़ी में ही हो जायेंगी। इसके अतिरिक्त इन परीक्षणों से मुक्त या दूसरे रेडियो सक्रिय पदार्थ मुक्त हुए हैं उनसे कारण 4 लाख विशेषक मृत्यु होंगी। मृतकों की इस संख्या में केवल बाल मृत्यु (जिसमें मरे हुए नवजात भी शामिल हैं) ही शामिल की गई हैं। (गर्भावस्था और नवजात बच्चों की मृत्यु इसमें शामिल नहीं की गई है) इन आंकड़ों से यह साफ जाहिर है कि अब तक जो परीक्षण हुए हैं उन से होने वाला विनाश ही भयंकर है और यह जरूरी हो गया है कि इस बात का अध्ययन किया जाय कि स्ट्रांशियम-90 वातावरण में किस हद तक मौजूद है उन देहाती क्षेत्रों में इस प्रकार के अध्ययन करने की अत्यधिक आवश्यकता है जो नगर क्षेत्रों से पृथक पड़े हैं। इसके साथ यह भी याद रखना आवश्यक है कि स्ट्रांशियम-90 से उन क्षेत्रों में उपरोक्त अनुमान से कहीं अधिक मृत्यु होंगी जहाँ लोग अपनी कैल्शियम आवश्यकतायें वनस्पति

(डूब रही) स्रोतों से पूरी करते हैं और यहाँ कम पोषक खाद्य गायों को मिलते हैं।

संहारक युद्ध अन्य ग्रहों पर भी

आदमी इस संहारक युद्ध को पृथ्वी ग्रह तक ही सीमित नहीं रखना चाहता। वह तो इस लड़ाई को दूसरे ग्रहों पर भी ले जाने के मनसूबे बना रहा है। यह बात अमरीकी वायु सेना के एक जनरल की बात जिसकी बातों से साफ जाहिर होती है जो 'आई. एफ. स्टोन्स वीकली' के 20 अक्तूबर 1950 के अंक में प्रकाशित हुई थी। यह स्पुतनिक छोड़े जाने से पहले की बात है। इस जनरल ने सैन्य सेवाओं की हाउस कमेटी के सामने बयान देते हुए कहा था "यदि अमरीका चन्द्रमा पर प्रेक्षण अड्डों का केन्द्र बना सका तो इस स्थान से हाइड्रोजन बमों से सुसज्जित निर्देशित प्रक्षेप अस्त्र पृथ्वी के किसी भी भाग के लिए छोड़े जा सकेंगे।"

उनको बीच में टोक कर जब किसी ने उनको यह बताया कि रूस भी ऐसा कर सकता है तो उन्होंने कहा "अमरीका को मंगल और शुक्र ग्रह पर भी अधिकार कर लेना चाहिए। (क्योंकि उस समय यह समझा जाता था कि रूस वहाँ इस तरह पहुँच ही नहीं सकता।) इससे जाहिर है कि यदि युद्ध और भय का वातावरण बराबर

यदि इस सम्भावित विनाश का औसत एक शताब्दी पर फैलाया जाय या 100 मैगाटन विखण्डन शक्ति से मुक्त स्ट्रौंशियम-90 के कारण पैदा होती है तो विनाश के उपरोक्त आंकड़े दुगने हो जायेंगे।

परीक्षणों से मुक्त रेडियो सक्रिय कार्बन-14 के कारण 30 लाख मृत्यु होंगी जिनमें से 10 प्रतिशत यानी 15 हजार अगली पीढ़ी में ही हो जायेंगी। इसके अतिरिक्त इन परीक्षणों से मुक्त जो दूसरे रेडियो सक्रिय पदार्थ मुक्त हुए हैं उनके कारण 4 लाख विशेषक मृत्यु होंगी। मृतकों की इस संख्या में केवल बाल मृत्यु (जिसमें मरे हुए नवजात भी शामिल हैं) ही शामिल की गई हैं। (गर्भ-स्राव और नवजात बच्चों की मृत्यु इसमें शामिल नहीं की गई है) इन आँकड़ों से यह साफ जाहिर है कि अब तक जो परीक्षण हुए हैं उन से होने वाला विनाश ही भयंकर है और यह जरूरी हो गया है कि इस बात का अध्ययन किया जाय कि स्ट्रौंशियम-90 वातावरण में किस हद तक मौजूद है उन देहाती क्षेत्रों में इस प्रकार के अध्ययन करने की अत्यधिक आवश्यकता है जो नगर क्षेत्रों से पृथक पड़े हैं। इसके साथ यह भी याद रखना आवश्यक है कि स्ट्रौंशियम-90 से उन क्षेत्रों में उपरोक्त अनुमान से कहीं अधिक मृत्यु होंगी जहाँ लोग अपनी कैल्शियम आवश्यकतायें वनस्पति

(दूध यहीं) चीजों से पूरी करता है और जहाँ कम पोषक खाद्य लोगों को मिलते हैं।

संहारक युद्ध अन्य ग्रहों पर भी

आदमी इस संहारक युद्ध को पृथ्वी तक ही सीमित नहीं रखना चाहता। वह तो इस लड़ाई को दूसरे ग्रहों पर भी ले जाने के मनसूबे बना रहा है। यह बात अमरीकी वायु सेना के एक जनरल की उन लिखी बातों से साफ जाहिर होती है जो 'मार्ई एच० स्मोल्स वीकली' के 20 अक्तूबर 1957 के अंक में प्रकाशित हुई थी। यह स्पुतनिक छोड़े जाने से पहले की बात है। इस जनरल ने सैन्य सेवाओं की हाउस कमेटी के सामने बयान देते हुए कहा था 'यदि अमरीका चन्द्रमा पर प्रक्षेप अस्त्रों का केन्द्र बना सका तो इस स्थान से हाइड्रोजन अस्त्रों से सुसज्जित निर्देशित प्रक्षेप अस्त्र पृथ्वी के किसी भी भाग के लिए छोड़े जा सकेंगे।"

उनको बीच में टोक कर जब किसी ने उनको यह बताया कि रूस भी ऐसा कर सकता है तो उन्होंने कहा "अमरीका को मंगल और शुक्र ग्रह पर भी अधिकार कर लेना चाहिए।" (क्योंकि उस समय यह समझा जाता था कि रूस वाले इस तक पहुँच ही नहीं सकते।) इससे जाहिर है कि यदि युद्ध और भय का वातावरण बराबर

बना रहा तो मनुष्य विनाश के इस ताण्डव नृत्य को पृथ्वी पर ही नहीं अन्तरिक्ष में भी फैला देगा।

परमाणु अस्त्रों से पैदा हुए भय का प्रभाव आज इस भयानक स्थिति को पहुँच गया है कि केवल आज दोनों पक्षों में लाखों मेगाटन शक्ति के परमाणु अस्त्र न केवल बना कर रख लिए हैं वरन् उनको इस भाँति सजाया हुआ है कि कुछ मिनटों से लेकर कुछ घन्टों तक में ही उनको पूर्व निश्चित लक्ष्यों पर छोड़ा जा सकता है। ये लक्ष्य आमतौर पर या तो बड़े-बड़े नगर हैं या अत्यधिक जन संख्या वाले क्षेत्र हैं। परमाणु युद्ध में परमाणु अस्त्र छोड़ने वाली पनडुब्बियों आदि जैसे सैन्य लक्ष्य की अपेक्षा नगर लक्ष्य अधिक लाभदायक समझे जा रहे हैं जिनसे एक साथ ही न केवल लाखों करोड़ों लोगों की मृत्यु होती है वरन् आम जनता का आत्म विश्वास और नैतिक बल भी समाप्त हो जाता है।

आज पृथ्वी पर इन परमाणु अस्त्रों के कारण भयानक भय मनुष्य के सिर पर तलवार की तरह लटक रहा है और पता नहीं कब यह नाश उस पर गिर पड़े। यदि विनाशकारी शक्तियों को समय रहते नहीं रोका गया तो निश्चित ही एक दिन मानवीय भावनाओं का ऐसा विस्फोट होगा जो परमाणु की सहायता से सम्पूर्ण मानवता को सदा के लिये मिटा देगा।

युद्ध रोकने के लिये सामूहिक प्रयत्न

अभी कुछ समय पहले श्री एम० एफ रिचर्डसन ने युद्धों के बारे में एक बड़ा दिलचस्प शास्त्रीय विश्लेषण किया है। इस विश्लेषण से यह नतीजा निकलता है कि मानव इतिहास के लम्बे युगों में युद्धों का वितरण 'पोइसन वितरण' के नियमानुसार होता है। यह वितरण नियति या भाग्य के ऊपर निर्भर करता है। इसलिए मनुष्यों के केवल चाहने भर से युद्धों को नहीं रोका जा सकता। सम्भावनाओं पर आधारित कभी भी फूट पड़ने वाले युद्ध जैसी घटनायें तो केवल सामूहिक प्रयत्न और सहयोग के द्वारा ही रोकी जा सकती हैं। यह तभी हो सकता है जब हमारे आदर्श पवित्र हों और उद्देश्य बहुत ऊँचे हों। आज हम एक ऐसे चौराहे पर खड़े हैं जहाँ से हम चाहें तो ऐसी दुनियां में प्रवेश कर सकते हैं जो विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय से बनने वाली है या चाहें तो ऐसे रास्ते पर जा सकते हैं जहाँ सम्पूर्ण मानव समाज अपने से टकरा कर चकनाचूर हो जायेगा। हमें कौन-सा रास्ता चुनना है यह सोचने में हम जितनी देरी करेंगे उतना ही संकट बढ़ता जायेगा। मनुष्य ने अपने प्रयत्नों से ऐसी वैज्ञानिक उपलब्धियां प्राप्त कर ली हैं जिनके कारण वह आज एक विराट विश्व का नागरिक बनने जा रहा है। शर्त यह है

कि वह अपनी मूर्खता और अहमता से कहीं परमाणु अस्त्रों के सर्पिलाकार भँवर में न फँस जाये। इस लिए इस दिशा में आज जो भी छोटे से छोटा काम होगा वह निश्चय ही हमें इस संकट से दूर करने में सहायता करेगा।



विज्ञान साहित्य और मानव

3

विज्ञान तथ्य की खोज करता है और भाषा उस तथ्य की अभिव्यक्ति देती है। इसलिये भाषा की प्रगति विज्ञान के लिये और विज्ञान की प्रगति भाषा के लिये आवश्यक है।

8

वैज्ञानिक शब्दावली

आधुनिक जगत का रूप अब बहुत कुछ विज्ञान द्वारा निश्चित होने लगा है। विज्ञान का प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में मनुष्य और अन्य पदार्थों पर जो प्रभाव पड़ता है वह भी संसार के आधुनिक रूप को निश्चित करने में महत्वपूर्ण भाग अदा करता है। विज्ञान को आगे बढ़ाने में और उसके विकास में अनेक देशों के लोगों ने जिसमें हमारे देश के लोग भी शामिल हैं काफी योगदान किया है। सचाई तो यह है कि विज्ञान सम्पूर्ण मानव समाज का सम्मिलित प्रयास है और इसी कारण इसकी असाधारण गति से दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की हुई है। संसार को एकता की लड़ी में पिरोने और सांस्कृतिक दृष्टि से इसका बहुत गहरा प्रभाव है क्योंकि इसके आदर्श और उद्देश्य जिनके बारे में यह निरन्तर खोज करता रहता है सार्वदेशिक हैं और वे साम्प्रदायिक राष्ट्रीय और जाति-विचारों की सीमा से परे हैं। विज्ञान स्पर्धा नहीं सहयोग चाहता है और इसका आधार मनुष्य की गहरी आकांक्षाओं और सर्वोच्च सामर्थ्य में निहित है

वैज्ञानिक प्रगति का आधार

वैज्ञानिकों के बीच स्वतंत्र रूप से ज्ञान के बारे में विचारों का आदान प्रदान सदा से ही वैज्ञानिक प्रगति का आधार रहा है और आज भी प्रमुख रूप से वैज्ञानिक प्रगति का यही आधार है। विचारों का यह आदान-प्रदान वैज्ञानिक पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से होता है और राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक विचार गोष्ठियाँ और सम्मेलन इसमें सहायता पहुँचाते हैं। यह माना कि एक विश्व भाषा का न होना इन विचारों की अदला बदली में बहुत बड़ी रुकावट है लेकिन ऊपर से यह जितनी बड़ी दिखाई पड़ती है वास्तव में उतनी है नहीं। विज्ञान के विकास के प्रारम्भिक दिनों (17 वीं शताब्दी) में पश्चिमी यूरोप में ईसाई-संसार में ज्ञान-विज्ञान को सीखने की आम भाषा लैटिन थी। इसलिए जब विज्ञान में नये नये शब्दों की आवश्यकता होती थी तो या तो लैटिन के शब्दों से (साथ ही ग्रीक से भी) नये शब्द बनाये जाते थे या उनका वैज्ञानिक संसार में विचारों को समझने के लिए आधार लेकर विशिष्ट अर्थ दे दिये जाते थे। बाद में धीरे धीरे बहुत सी वैज्ञानिक पुस्तकें योरोपीय भाषाओं में लिखी जाने लगी जिनमें अंग्रेजी फ्रेंच और जर्मन सबसे महत्वपूर्ण है।

न्यूटन ने अपना प्रसिद्ध वैज्ञानिक ग्रन्थ 'प्रिन्सीपिया' लैटिन में लिखा था। यह पहली बार 1687 में प्रकाशित हुआ था। इसका अंग्रेजी अनुवाद लगभग 100 वर्ष बाद 1772 में प्रकाशित हो पाया। न्यूटन ने अपना दूसरा ग्रंथ "ऑपटिक्स" जो विशेष रूप से व्यावहारिक विज्ञान से सम्बन्धित था अंग्रेजी में ही लिखा जो 1704 में प्रकाशित हुआ। इसका लैटिन में रूपान्तर सौ वर्ष बाद छपा। 17 वीं शताब्दी में यह बात इतनी महत्वपूर्ण नहीं थी जितनी कि आज है और न उस समय ज्ञान के प्रसार में अंग्रेजी और लैटिन में छपने के कारण कोई विशेष ही अन्तर पड़ता था। लेकिन यह याद रखने की बात है कि 'प्रिन्सीपिया' जैसे सैद्धान्तिक ग्रन्थ के गणितीय रूप को लैटिन जैसी समृद्धिशाली भाषा में ही अच्छी तरह लिखा जा सकता था जबकि "ऑपटिक्स" जैसे व्यावहारिक विज्ञान की पुस्तक नरम अंग्रेजी में भी लिखी जा सकती थी। और यही हुआ भी था। प्रसिद्ध वैज्ञानिक लैव्वैस ने अपने सैद्धान्तिक ग्रन्थ "मैकेनीक सैलेस्टे" फ्रैंच भाषा में लिखा था जबकि लोग आमतौर पर लैटिन में ही लिखता था।

रूसी और अंग्रेजी जरूरी

आजकल लगभग 10 लाख मौलिक वैज्ञानिक और टैक्नीकल लेख तथा लगभग 50 हजार वैज्ञानिक और

टैक्नीकल पुस्तकें और पुस्तिकायें और इतनी ही रिपोर्ट प्रतिवर्ष प्रकाशित होती हैं। और यह साहित्य मुख्य रूप से अंग्रेजी और रूसी भाषा में लिखा जाता है। इन दो भाषाओं ने वैज्ञानिक साहित्य में जो स्थान बना लिया है वह इस बात का द्योतक है कि इन भाषाओं के बोलने वाले लोगों ने विज्ञान के विकास में कितना योगदान किया है। 50 प्रतिशत से भी अधिक वैज्ञानिक साहित्य अंग्रेजी में ही प्रकाशित होता है। इसके बाद जर्मन और फ्रैंच भाषा का स्थान है किन्तु उनका महत्व आज उतना नहीं रहा जितना आज से लगभग 20 वर्ष पहले था। रूस में महत्वपूर्ण वैज्ञानिक पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों के अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किये जाते हैं और सोवियत यूनियन की विज्ञान एकेडेमी बड़े पैमाने पर रूसी भाषा में अन्य भाषाओं के वैज्ञानिक साहित्य का अनुवाद प्रकाशित करती है।

आज ऐसे प्रत्येक वैज्ञानिक को जो अपने अध्ययन

प्रकार की एलेक्ट्रोनिक मशीनें बना ली जायेंगी जो एक भाषा से दूसरी भाषा में अपने आप अनुवाद कर सकेंगी। आजकल सोवियत यूनियन में विज्ञान एकेडेमी के अन्तर्गत "एप्लाइड मैकेनिक्स और कम्प्यूटिंग टैक्निक संस्था" मशीनों द्वारा अनुवाद का काम करने की खोज में बड़े व्यापक रूप से लगी हुई है। यहां पर रूसी चीनी आर्मेनियन जार्जियन यूक्रेनियन हंगेरियन अरबी वियतनाम अंग्रेजी बर्मी नार्वेजियन टर्किश हिन्दी आदि में अनुवाद करने वाली मशीनों पर काम हो रहा है। इस सम्बन्ध में एक और बड़ी दिलचस्प समस्या विभिन्न यहाँ पर रहने वाले बुद्धिजीवियों के बीच विचारों के आदान प्रदान के लिए एक भाषा का विकास है जो निकट भविष्य में ही व्यापक रूप से महत्वपूर्ण हो जायेगी।

पारिभाषिक शब्दावली की ज़रूरत

वैज्ञानिक चिन्तन और वैज्ञानिक विचारों के आदान प्रदान के लिए एक सुस्पष्ट पारिभाषिक शब्दावली का उपयोग बहुत ज़रूरी है जो विज्ञान की प्रत्येक शाखा के लिए विशिष्ट होती है। एक पारिभाषिक शब्द का रूप अर्थात् जिस शब्द द्वारा वह वैज्ञानिक विचार ज़ाहिर किया जाता है एक भाषा से दूसरी भाषा में आमतौर पर अलग-अलग होता है लेकिन फिर भी उसमें

टैक्नीकल पुस्तकें और पुस्तिकायें और इतनी ही रिपोर्ट प्रतिवर्ष प्रकाशित होती है। और यह साहित्य मुख्य रूप से अंग्रेजी और रूसी भाषा में लिखा जाता है। इन दो भाषाओं ने वैज्ञानिक साहित्य में जो स्थान बना लिया है वह इस बात का द्योतक है कि इन भाषाओं के बोलने वाले लोगों ने विज्ञान के विकास में कितना योगदान किया है। 50 प्रतिशत से भी अधिक वैज्ञानिक साहित्य अंग्रेजी में ही प्रकाशित होता है। इसके बाद जर्मन और फ्रेंच भाषा का स्थान है किन्तु उनका महत्व आज उतना नहीं रहा जितना आज से लगभग 20 वर्ष पहले था। रूस में महत्वपूर्ण वैज्ञानिक पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों के अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किये जाते हैं और सोवियत यूनियन की विज्ञान एकेडेमी बड़े पैमाने पर रूसी भाषा में अन्य भाषाओं के वैज्ञानिक साहित्य का अनुवाद प्रकाशित करती है।

आज ऐसे प्रत्येक वैज्ञानिक को जो अपने अध्ययन और पठन-पाठन को आगे बढ़ाना चाहता है और अनुसंधान करना चाहता है यह जरूरी हो गया है कि रूसी या अंग्रेजी भाषा में से किसी एक का अच्छा ज्ञान उसे प्राप्त हो और यदि वह दोनों भाषायें जानता है तो यह उसके लिए सोने में सुहागे का काम करता है। यह लगभग निश्चित ही है कि आने वाले वर्षों में कुछ इस

प्रकार की एलेक्ट्रोनिक मशीनें बना ली जायेंगी जो एक भाषा से दूसरी भाषा में अपने आप अनुवाद कर सकेंगी। आजकल सोवियत यूनियन में विज्ञान एकेडेमी के अन्तर्गत "एप्लाइड मैकेनिक्स और कम्प्यूटिंग टैकनिक संस्था" मशीनों द्वारा अनुवाद का काम करने की खोज में बड़े व्यापक रूप से लगी हुई है। यहाँ पर रूसी चीनी आर्मेनियन जार्जियन यूक्रेनियन हंगेरियन अरबी वियतनाम अंग्रेजी बर्मी तातारियन टर्किश हिन्दी आदि से अनुवाद करने वाली मशीनों पर काम हो रहा है। इस सम्बन्ध में एक और बड़ी दिलचस्प समस्या विभिन्न ग्रहों पर रहने वाले बुद्धजीवियों के बीच विचारों के आदान प्रदान के लिए एक भाषा का विकास है जो निकट भविष्य में ही व्यापक रूप से महत्वपूर्ण हो जायेगी।

पारिभाषिक शब्दावली की जरूरत

वैज्ञानिक चिन्तन और वैज्ञानिक विचारों के आदान प्रदान के लिए एक सुस्पष्ट पारिभाषिक शब्दावली का उपयोग बहुत जरूरी है जो विज्ञान की प्रत्येक शाखा के लिए विशिष्ट होती है। एक पारिभाषिक शब्द का रूप अर्थात् जिस शब्द द्वारा वह वैज्ञानिक विचार जाहिर किया जाता है एक भाषा से दूसरी भाषा में आमतौर पर अलग-अलग होता है लेकिन फिर भी उसमें

निश्चित विचार परिभाषा द्वारा सुनिश्चित कर दिया जाता है। उदाहरण के लिए 'वेग' शब्द जर्मन में 'गेशविन्डिकेट' फ्रेंच में 'विटेसी" रूसी में 'स्कोरोस्त" और जापानी में 'सोकूदो' है। पर इन सभी शब्दों से "वेग" का भाव ही जाहिर होता है। किसी भी वैज्ञानिक शब्द के अर्थ एक भाषा से दूसरी भाषा में ले जाने पर सम्पूर्ण रूप से सुरक्षित कर दिये जाते हैं फिर भले ही वे दोनों भाषायें कितनी ही विभिन्न क्यों न हों। लेकिन इन अलग-अलग भाषाओं में इस वैज्ञानिक विचार के लिए अलग-अलग शब्द इस्तेमाल किये जाते हैं। विज्ञानेतर साहित्य में शब्द के अर्थों की सुनिश्चित रूप से व्याख्या नहीं की जाती उनके चारों ओर सदा ही भ्रान्ति का एक ऐसा कोहरा छाया रहता है जिसके कारण अनुवाद करने पर वही बात नहीं आ पाती जो मूल में निहित थी। इस सम्बन्ध में श्री जे० टी बैरमान ने अपनी पुस्तक 'मान सैम्युएल एण्ड लॉजिक" में जो विचार व्यक्त किये हैं उनमें से कुछ यहाँ पर उद्धृत किये जा रहे हैं। फ्रेंच कविताओं के अंग्रेजी अनुवाद में से एक भी ऐसा नहीं है जो मूल कविता के भावों की गम्भीरता और सौन्दर्य का आधा प्रभाव भी उपस्थित कर सके। --- वैज्ञानिक साहित्य को छोड़ कर साहित्य में कोई भी ऐसा शब्द नहीं है जो सभी परिस्थितियों में अंग्रेजी में केवल एक और

उसी शब्द के समानार्थ ही हो (देखिये टी० एच० सैवौरी द्वारा लिखित "लाउंसिंग एमंग वर्ड्स आफ साइंस" १९६६)।

अंग्रेजी का साइंस शब्द ही एक बड़ा दिलचस्प उदाहरण है। साइंस शब्द के लिए रूसी भाषा में 'नौका' और जर्मन भाषा में 'विसिनशैफ्ट' इस्तेमाल किए जाते हैं। यद्यपि अंग्रेजी के साइंस शब्द से अर्थ 'नौका' व 'विसिनशैफ्ट' की तुलना में बहुत ही संकुचित है। सच तो यह है कि रूसी शब्द नौका के तुल्यांक कोई शब्द है ही नहीं।

ऊपर जिन बातों की चर्चा की गई है उनके अनुसार यह कहा जा सकता है कि विज्ञान किसी शब्द के अर्थों को निश्चित करता है जबकि भाषा उस शब्द की निश्चित करती है। ऐसे सन्दर्भ में हम इस बहुभाषी संसार में विज्ञान की एक समान भाषा की बात करते हैं क्योंकि किसी भी वैज्ञानिक शब्द के अर्थ विज्ञान में निहित होते हैं। लेकिन शब्द भाषा विशेष से सम्बन्धित होता है जो उसके व्याकरण और वाक्य विन्यास के नियमों से बंधा रहता है।

अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली

वैज्ञानिक शब्दावली के सबसे बड़े महत्वपूर्ण शब्द वे हैं जो लगभग सभी महत्वपूर्ण योरोपियन भाषाओं में समान हैं। यद्यपि संख्या में वे अपेक्षाकृत कम हैं। ऐसे शब्दों को

निहित विचार परिभाषा द्वारा सुनिश्चित कर दिया जाता है। उदाहरण के लिए 'वेग' शब्द जर्मन मे 'गेशविडिकैट' फ्रेंच में "विटेसी" रूसी में 'स्कोरोस्त" और जापानी में "सोकूडो" है। पर इन सभी शब्दों से 'वेग' का भाव ही जाहिर होता है। किसी भी वैज्ञानिक शब्द के अर्थ एक भाषा से दूसरी भाषा में ले जाने पर सम्पूर्ण रूप से सुरक्षित कर लिये जाते हैं फिर भले ही वे दोनो भाषायें कितनी ही विभिन्न क्यो न हों। लेकिन इन अलग-अलग भाषाओं में इस वैज्ञानिक विचार के लिए अलग-अलग शब्द इस्तेमाल किये जाते हैं। विज्ञानेतर साहित्य मे शब्द के अर्थों की सुनिश्चित रूप से व्याख्या नहीं की जाती उनके चारों ओर सदा ही भ्रान्ति का एक ऐसा कोहरा छाया रहता है जिसके कारण अनुवाद करने पर वही बात नहीं आ पाती जो मूल मे निहित थी। इस सम्बन्ध में श्री जे० डी० बेटमान ने अपनी पुस्तक 'मान मैथुएन एण्ड लॉजिक' में जो विचार व्यक्त किये हैं उनमे से कुछ यहाँ पर उद्धृत किए जा रहे हैं। फ्रेंच कविताओं के अंग्रेजी अनुवाद म से एक भी ऐसा नहीं है जो मूल कविता के भावों की गम्भीरता और सौन्दर्य का आधा प्रभाव भी उपस्थित कर सके। ... वैज्ञानिक साहित्य को छोड़ कर साहित्य में कोई भी ऐसा शब्द नहीं है जो सभी परिस्थितियों में अंग्रेजी के केवल एक और

उसी शब्द के समानार्थ ही हो (देखिये टी० एच० सैवोरी द्वारा लिखित "वारडिंग एमंग वर्ड्स आफ साइंस" १९५१)।

अँग्रेजी का साइंस शब्द ही एक बड़ा दिलचस्प उदाहरण है। साइंस शब्द के लिए रूसी भाषा में 'नौका' और जर्मन भाषा में 'विशिनशैफ्ट' इस्तेमाल किए जाते हैं। यद्यपि अंग्रेजी के साइंस शब्दके अर्थ 'नौका' व विशिनशैफ्ट' की तुलना में बहुत ही संकुचित है। सच तो यह है कि रूसी शब्द नौका के मुकाबले कोई शब्द है ही नहीं।

ऊपर जिन बातों की चर्चा की गई है उनके अनुसार यह कहा जा सकता है कि विज्ञान किसी शब्द के अर्थों को निश्चित करता है जबकि भाषा उस शब्द को निश्चित करती है। ऐसे सन्दर्भ में हम इस बहुभाषी संसार में विज्ञान की एक समान भाषा की बात करते हैं क्योंकि किसी भी वैज्ञानिक शब्द का अर्थ विज्ञान में निहित होते हैं। लेकिन शब्द भाषा विशेष से सम्बन्धित होता है जो उसके व्याकरण और वाक्य विन्यास के नियमों से बँधा रहता है।

अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली

वैज्ञानिक शब्दावली में सबसे बड़े महत्वपूर्ण शब्द वे हैं जो लगभग सभी महत्वपूर्ण योरोपियन भाषाओं में समान हैं। यद्यपि संख्या में वे अपेक्षाकृत कम हैं। ऐसे शब्दों को

संकेत में अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली कहा जाता है। इस शब्दावली में तत्वों और उनके संयुक्तों को बताने वाले संकेत भौतिक विज्ञान के एकक और उनके सिवाय गणित में उपयोग होने वाले संकेत और चिन्ह, पौधों और जन्तुओं के लिए बनाए गये वैज्ञानिक नाम जो बायनोमियल लैटिन नेम कहलाते हैं आदि शामिल हैं। अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली के शब्द भी आम तौर पर समान नहीं होते। वे अलग-अलग भाषाओं की प्रकृति और प्रकृति के अनुरूप भिन्न होते हैं। किन्तु वे एक दूसरे के लिप्यन्तरित शब्द ही होते हैं। यदि दो भाषाओं में लिपियों या वर्णमाला अथवा दोनों में बुनियादी तौर से विभिन्नता है जैसे अंग्रेजी और जापानी में तो दूसरे वैज्ञानिक शब्दों की समानता केवल उच्चारण तक ही रह जाती है और कभी-कभी तो यह भी नहीं रहती।

अभी जिस शब्दावली को हमने अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली के नाम से पुकारा है उसके अन्तर्गत अधिकांशतः विशिष्ट वस्तुओं के नाम गणित के संकेत और उनसे सम्बन्धित क्रियायें ही आती हैं। जब हम भौतिक सिद्धान्तों और वस्तुओं के गुण धर्मों जैसे संहिता बल घनत्व उत्स्मा-गतीकी आदि का वर्णन करते हैं तो स्थिति बिलकुल बदल जाती है और यह बदलनी भी चाहिए। टेक्नीकल शब्द आम तौर पर मोटे रूपों में दो वर्गों में विभाजित किये जा

सकते हैं। यद्यपि कभी-कभी कोई शब्द दोनों वर्गों में आ जाता है।

(ख) ऐसे शब्द जो बोलचाल की भाषा से लिए गये हैं और जिनको एक निश्चित वैज्ञानिक अर्थ दे दिया गया है। ऐसे शब्द कभी-कभी उधार लिए गये शब्द भी कहलाते हैं।

(ग) वे शब्द जो बोलचाल की भाषा में इस्तेमाल नहीं होते या होते हैं तो कभी-कभी। ये शब्द विशेष रूप से वैज्ञानिक प्रयोजन के लिए बनाये जाते हैं।

विज्ञान द्वारा आम बोलचाल की भाषा से उधार लिए गये शब्दों के अंग्रेजी भाषा में कुछ उदाहरण ये हैं — "वर्क" "सम" "मास" और "चार्ज"। शब्दों के ग वर्ग के उदाहरण यह हैं "आइसोटोप" "आइसोबार" "पैम" ...डियो एक्टीविटी" और "क्वांटीजेशन"।

अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली के शब्द आमतौर पर दूसरे वर्ग में आते हैं। किन्तु भौतिक विज्ञानों में उपयोग किये गये पारिभाषिक शब्दों की बहुत बड़ी संख्या ऐसी है जो उधार लिये हुए शब्द हैं और जिनको एक निश्चित वैज्ञानिक अर्थ दे दिया गया है और जो बहुधा आम बोलचाल की भाषा के अर्थों से बिलकुल अलग होता है। इस बात को सिद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि टेकनीकल शब्दों के किसी भी बहुभाषी शब्द कोश को देखने

पर इसका पता चल सकता है। जैसे —एल्सवियर का 6 भाषाओं में 'नाभिक विज्ञान और टैक्नोलौजी' का शब्द कोश" जो 1958 में प्रकाशित हुआ था। इसके अतिरिक्त हम पारिभाषिक और बोलचाल के आम शब्दों के बीच में कोई निश्चित सीमा नहीं खींच सकते। यह कहा जा सकता है कि पारिभाषिक शब्दावली सभी भाषाओं का एक अविभाज्य अंग होता है और किन्हीं भी दो भाषाओं की पारिभाषिक शब्दावलियाँ उसी सीमा तक समान या समानार्थ शब्दों से सुसज्जित होती हैं जिस अनुपात में उन दोनों भाषाओं में समानता होती है। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी फ्रेंच स्पेनिश और इटैलियन भाषाओं में आमतौर पर टैक्नीकल शब्दावली भी समान होती है। जैसे अंग्रेजी का 'एसिड' इन भाषाओं में क्रमश: 'एसीडी' 'एसिडो' व 'एसिड' हो जाता है बैटरी क्रमश: 'बैटरी' 'बटेरिया' और बटेरिया और सैल क्रमश: 'सैल्यूले' सैल्यूला और 'सैल्यूला' हो जाता है। जब कि जर्मन रशियन और जापानी भाषाओं में एसिड और बैटरी क्रमश: सौरे, किसलोटा और सन बैटरी बटेरिया और डैंची हो जाती है।

वैज्ञानिक शब्दावली और भारतीय भाषायें

अपने देश की समस्त क्षेत्रीय भाषाओं के लिए एक सर्व समान वैज्ञानिक शब्दावली का विचार स्पष्ट

अव्यावहारिक होगा। वैज्ञानिक या अन्य कोई भी समान शब्दावली केवल सामान्य भाषा पर ही आधारित हो सकती है। उदाहरण के लिए यूरोपीय भाषाओं में कोई सामान्य वैज्ञानिक शब्दावली नहीं है और उनके लिए अनेक बहुभाषी कोष बनाये गये हैं। पर्गामान प्रेस द्वारा सात जिल्दों में भौतिकी का कोष प्रकाशित हो रहा है जिसमें लगभग 15 000 शब्द होंगे। इन सात भागों में एक भौतिकी में उपयोग किये गये शब्दों का बहुभाषी शब्द-कोष होगा जिसमें एक ही शब्द के अंग्रेजी फ्रांसीसी जर्मन स्पेनी रूसी चीनी और जापानी आदि भाषाओं में पर्याय रहेंगे और जिसकी सहायता से इस कोष में एक शब्द का एक भाषा से दूसरी भाषा में जाना जा सकता। इस बार में कोई भारतीय भाषा शामिल नहीं की गई है।

विज्ञान का माध्यम

गवेषणा को प्रोत्साहन देने के लिए, स्कूली शिक्षा के माध्यम तथा विज्ञान को व्यापक रूप में लोकप्रिय बनाने का काम उसी क्षेत्र की भाषा के माध्यम से होना चाहिए। इसके लिये हिन्दी क्षेत्र में पूर्व की व्यवस्था में क्षेत्रीय भाषा तथा अंग्रेजी दोनों की वैज्ञानिक शब्दावली के प्रयोग का सुझाव दिया गया है। वास्तव में इस दूसरी शब्दावली का प्रयोग अगले कुछ वर्षों के लिए आवश्यक होगा क्योंकि

कालिज स्तर पर पाठ्य पुस्तकें अंग्रेजी तथा क्षेत्रीय भाषाओं दोनों मे ही उपलब्ध होंगी और जिसके लिए विद्यार्थी को इन दोनों शब्दावलियों का ज्ञान आवश्यक होगा। कालिज-छात्र के लिए उसके बढ़ते हुए अंग्रेजी ज्ञान के साथ-साथ अंग्रेजी वैज्ञानिक शब्दावली आसानी से समझ में आती जायेगी क्योंकि स्कूल स्तर पर अपनी ही भाषा मे अध्ययन करने के कारण वह अंग्रेजी वैज्ञानिक शब्दावली के अर्थों से पहले ही परिचित हो चुका होगा। इसके अतिरिक्त दो भाषाओं की शब्दावलियों का एक साथ प्रयोग परोक्ष रूप से भारतीय भाषाओं को समृद्ध करने में भी सहायक होगा। (अंग्रेजी की वैज्ञानिक शब्दावली अधिकांश में लैटिन से व्युत्पादित है। यदि कालेज स्तर पर समुचित लैटिन धातुओं और प्रत्ययों के मनन के लिए कुछ घंटे दे दिये जायें तो इससे छात्र को वैज्ञानिक शब्दावली और विशेष कर जैविक विज्ञान सम्बन्धी शब्दावली को भली प्रकार समझने मे सहायता मिलेगी।)

क्षेत्रीय भाषाओं में पृथक् शब्दावलियाँ

प्रमुख क्षेत्रीय भाषाओं के लिए वैज्ञानिक शब्दावलियों की आवश्यकता के कारणों पर पहले ही विचार किया जा चुका है और उन्हें संक्षेप मे नीचे दिया जा रहा है।

(1) विज्ञान के इस युग मे यदि किसी भाषा के

पास वैज्ञानिक तथ्यों और विचारों को व्यक्त करने के लिए पर्याप्त शब्द भण्डार नहीं है तो वह अपने महत्व और जीवन क्षमता को ही खो बैठेगी। एक समय था जब देश में सम्पूर्ण देश के लिए एक ही समानिक शब्दावली रखने का चलन था। पर अब उसके अलग-अलग राज्यों द्वारा अपनी क्षेत्रीय भाषाओं में ही वैज्ञानिक शब्दावली के विकास की प्रवृत्ति चल पड़ी है। विज्ञान की व्यापक प्रगति और क्षेत्रीय भाषाओं के विकास से इस प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला है। यहाँ पर क्षेत्रीय भाषाओं में वैज्ञानिक शब्दावलियों के काम को क्षेत्रीय विज्ञान अकादमी करती है।

(2) ज्ञान को अपनी ही भाषा (मातृ भाषा) में प्राप्त करने और वह भी विशेष कर प्रारम्भिक ज्ञान के प्राप्त करने के असीम व्यावहारिक लाभ को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। यदि तकनीकी शब्द विदेशी भाषा" में है तो उन्हें समझना और स्मरण रखना कठिन होता है। दूसरी भाषा में पढ़ने पर, तोते की तरह रटकर विज्ञान को आवश्यकता से अधिक जोर देकर वहाँ हमारी प्रतिभा नष्ट होती है वहाँ बुनियादी बात को पूरी तरह समझ भी नहीं पाते। विदेशी भाषा में शब्दों की वैज्ञानिक शिक्षा के बा" भी आपस में सम्बन्धित या समान शब्दों का अब ठीक-ठीक याद नहीं रहता जैसे: ऑक्समेट प्रीनट रौम या पिप एपीडीमियम पेरीडीमियम।

(3) विज्ञान की बुनियादी बातों की जड़ें प्रायः आदिम अनुभवों में निहित होती हैं। यदि कोई व्यक्ति किसी विचार को व्यक्त करने के लिए विज्ञान की कक्षा में एक शब्द तथा कक्षा से बाहर दूसरा शब्द प्रयोग करता है तो उसकी विज्ञान में पैठ स्वाभाविक नहीं होगी और विषय के बोध और ग्राह्यता को भारी क्षति होगी। इससे विज्ञान तथा अन्य विषयों की शिक्षा में अलगाव उत्पन्न हो जायगा।

(4) यदि वैज्ञानिक शब्दावली बोलचाल की भाषा से भिन्न होती है तो उन लोगों को जिन्होंने विज्ञान में दक्षता प्राप्त नहीं की विज्ञान की उन बातों को याद रखना मुश्किल हो जायेगा जो उन्होंने स्कूल में पढ़ी थीं और इस तरह विज्ञान में उनकी रुचि कम हो जायेगी।

(5) निपुण कारीगरों दस्तकारों और व्यापारियों का प्रशिक्षण उनके क्षेत्र की भाषा के माध्यम से ही सबसे आसानी से हो सकता है।

लिप्यान्तरण नहीं

(6) आमतौर पर यह व्यावहारिक नहीं हो पाता कि एक भाषा में व्यक्त किये विचारों को जाहिर करने वाले शब्द किसी दूसरी भाषा में इस्तेमाल किये जा सकें। एक शब्द से अनेक सहयोगी शब्द बनते हैं और यदि एक शब्द

को ज्यों का त्यों दूसरी भाषा में लिया जाता है तो समस्या इसके मतलब यही होंगे कि एक भाषा को दूसरी भाषा में स्थानान्तरित कर दिया जाए। नए शब्दों को निर्माण करने समय इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिए कि उसके सहयोगी शब्द भी बन सकें। उदाहरण के लिए अंग्रेजी में एक शब्द 'टु कण्डक्ट' है जिससे आमतौर पर इस्तेमाल होने वाले कई पारिभाषिक शब्द बनते हैं कण्डक्शन कण्डक्टर नानकण्डक्टर सेमीकण्डक्टर सुपर कण्डक्टर कण्डक्टीविटी सुपर-कण्डक्टीविटी और कण्डक्टैन्स।

यह बात औषधि शास्त्र के पारिभाषिक शब्दों के बारे में और भी अधिक लागू होती है क्योंकि यह माना कि वैज्ञानिक शब्दावली संख्या में बहुत बड़ी है पर इसके बुनियादी और मूल तत्त्व गिने चुने हैं। यदि इन मूल तत्त्वों का अध्ययन सामान्य शिक्षा का एक अंग बन जाए तो एक सामान्य व्यक्ति भी वैज्ञानिक शब्दों में से अधिकांश का इस प्रकार विश्लेषण कर सकता कि वे समझ में आने वाले शब्द बन सकें। पारिभाषिक शब्द कोश के आमतौर पर पृष्ठ के पृष्ठ ऐसी प्रयुक्त शब्दावली से भरे रहते हैं जिनको संघनित रूप में एक या दो शब्दों के द्वारा लिया जा सकता है।

औषधि शास्त्र के शब्द कोश जिसमें लगभग 30 हजार

सम्म होते हैं इनको 100 उपसर्गों 30 प्रत्ययों और शरीर के प्रमुख भागों को व्यक्त करने वाले शब्दों से लिखा जा सकता है। (इसके बारे में श्री डब्ल्यू ई० फ्लड और एम वैस्ट 'दी वोकेबुलरी आफ साइंस' का लेख 'दी न्यू साइंटिस्ट (1957) पेज 9 और 17 पर देखिये)

विज्ञान को व्यापक पैमाने पर लोक प्रिय बनाने के लिए क्षेत्रीय भाषा इस्तेमाल होनी जरूरी है। इसके लिए भाषा में आवश्यक पारिभाषिक शब्दावली होनी अनिवार्य है। प्रजातन्त्र में विज्ञान को लोकप्रिय बनाने का प्रयत्न न केवल इसीलिए जरूरी है कि इससे विज्ञान को समझ कर चलने आगे बढ़ने में सहारा मिलेगा बल्कि यह इसलिए भी जरूरी है कि औसत नागरिक विज्ञान की बातें समझे बिना, जो नयी दुनियां हमारे सामने खुल रही है, उसके बारे में कुछ भी नहीं जान सकेगा।

शब्दावली की योजना

अब हमें सोचना है कि वैज्ञानिक शब्दावली से सम्बन्धित हमारे काम की योजना क्या होनी चाहिए? विभिन्न विषयों की शब्दावली के बीच में हम किस तरह तालमेल बैठा सकते हैं और विभिन्न भाषाओं के बीच में इस बारे में कैसे समन्वय स्थापित किया जा सकता है? किस तरह से हम शब्दावलियों को इस्तेमाल करने वाले सूक्ष्म

और कागज के सिक्कों से नयी शब्दावली के बारे में सहयोग प्राप्त कर सकते हैं ?

हमारे देश में विभिन्न संस्थाओं द्वारा विशेष रूप से केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा काफी महत्व का काम इस दिशा में हो चुका है। निदेशालय ने शिक्षा मंत्रालय द्वारा स्थापित वैज्ञानिक शब्दावली मण्डल के निर्देशन में काफी काम किया है। हायर सैकण्डरी स्कूल के स्तर तक सभी विषयों की वैज्ञानिक शब्दावलियां बना ली गई हैं। लेकिन फिर भी इस क्षेत्र में बहुत कुछ करने को बाकी है। स्नातकोत्तर स्तर तक शब्दावली बनाने के अतिरिक्त विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के लिए हमें काम करना है और अब तक जो इस दिशा में काम हुआ है उसको अन्तिम रूप देना है तथा जो नयी शब्दावली विकसित की गई है उसको समुचित रूप से उपयोग में लाना है।

उपरोक्त पृष्ठ भूमि में हिन्दी की वैज्ञानिक शब्दावली के विकास को एक सतत प्रक्रिया के रूप में देखना होगा जिसका विज्ञान और भाषा पर प्रभाव पड़ता है और जो स्वयं उनके विकास और प्रगति से प्रभावित होती है।

यहां यह बात याद रखने की है कि हमारे सामने यह एक रचनात्मक और गतिशील समस्या है जिसको हम न तो सदा के लिए सुलझा सकते हैं और न ऐसी

पन्न होते हैं इनको 100 उपसर्गों 30 प्रत्ययों और शरीर के प्रमुख भागों को व्यक्त करने वाले शब्दों से मिला जा सकता है। (इसके बारे में डी डब्ल्यू० ई० फ्लड और एम० वैस्ट 'दी वाकेबुलरी आफ साइंस' का लेख 'दी न्यू साइंटिस्ट (1957) पेज 9 और 17 पर देखिये)

विज्ञान को व्यापक पैमाने पर लोक प्रिय बनाने के लिए क्षेत्रीय भाषा इस्तेमाल होनी जरूरी है। इसके लिए भाषा में आवश्यक पारिभाषिक शब्दावली होनी अनिवार्य है। प्रजातन्त्र में विज्ञान को लोकप्रिय बनाने का प्रयत्न न केवल इसीलिए जरूरी है कि इससे विज्ञान को समझ कर उसे आगे बढ़ाने में सहारा मिलेगा लेकिन यह इसलिए भी जरूरी है कि औसत नागरिक विज्ञान की बातें समझे बिना, जो नयी दुनिया हमारे सामने खुल रही है उसके बारे में कुछ भी नहीं जान सकेगा।

शब्दावली की योजना

अब हमें सोचना है कि वैज्ञानिक शब्दावली से सम्बन्धित हमारे काम की योजना क्या होनी चाहिए? विभिन्न विषयों की शब्दावली के बीच में हम किस तरह तालमेल बैठा सकते हैं और विभिन्न भाषाओं के बीच में इस बारे में कैसे समन्वय स्थापित किया जा सकता है? किस तरह से हम शब्दावलियों को इस्तेमाल करने वाले स्कूल

और कालेज के शिक्षकों से नयी शब्दावली के बारे में सहयोग प्राप्त कर सकते हैं ?

हमारे देश में विभिन्न संस्थाओं द्वारा विशेष रूप से केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा काफी महत्व का काम इस दिशा में हो चुका है। निदेशालय ने शिक्षा मंत्रालय द्वारा स्थापित वैज्ञानिक शब्दावली मण्डल के निर्देशन में काफी काम किया है। हायर सैकेण्डरी स्कूल के स्तर तक सभी विषयों की वैज्ञानिक शब्दावलियां बना ली गई हैं। लेकिन फिर भी इस क्षेत्र में बहुत कुछ करने को बाकी है। स्नातकोत्तर स्तर तक शब्दावली बनाने के अतिरिक्त विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के लिए हमें काम करना है और अब तक जो इस दिशा में काम हुआ है उसको अन्तिम रूप देना है तथा जो नयी शब्दावली विकसित की गई है उनको समुचित रूप से उपयोग में लाना है।

उपरोक्त पृष्ठ भूमि में हिन्दी की वैज्ञानिक शब्दावली के विकास को एक सतत प्रक्रिया के रूप में देखना होगा जिसका विज्ञान और भाषा पर प्रभाव पड़ता है और जो स्वयं उनके विकास और प्रगति से प्रभावित होती है।

यहाँ यह बात याद रखने की है कि हमारे सामने यह एक रचनात्मक और गतिशील समस्या है जिसको हम न तो सदा के लिए सुलझा सकते हैं और न वैसी

कोशिश हमें करनी ही चाहिए। हम तो आज और निकट भविष्य की पृष्ठ भूमि को ध्यान में रखकर ही इसका कोई ऐसा संतोषजनक हल निकाल सकते हैं जिससे विज्ञान की पढ़ाई आसान हो जाए और वह अभिजात वर्ग से निकल कर आम जनता तक पहुँच सके। इससे ही देश विज्ञान और औद्योगीकरण की ओर तेजी से प्रगति कर सकेगा।

अगर हमारी नयी शब्दावली यह नहीं कर सकती तो जो कुछ हम करेंगे वह करने योग्य नहीं है। किन्तु यदि इस शब्दावली से यह सम्भव हो सकता है तो यह काम अत्यधिक महत्वपूर्ण है और इसे किया ही जाना चाहिए।

9

भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य

भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक पाठ्य पुस्तकों की आवश्यकता पर सोचते समय पहला सवाल यह उठता है कि हम वैज्ञानिक और इन्जीनियरिंग की पाठ्य पुस्तकों को हिन्दी और दूसरी भारतीय भाषाओं में क्यों करना चाहते हैं ?

इसका उत्तर स्पष्ट है क्योंकि जब तक वैज्ञानिक विषयों पर पुस्तकें हिन्दी और देश की अन्य भाषाओं में उपलब्ध नहीं होंगी तब तक न तो देश के आम आदमियों को विज्ञान की उपलब्धियों से अधिक लाभ पहुँच सकेगा और न देश की वैज्ञानिक व औद्योगिक उन्नति ही तीव्र गति से हो पाएगी। हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य की चर्चा करते समय यह बात मेरे ध्यान में रहती है कि आज हिन्दी के दो पहलू हैं—हिन्दी एक ओर राजभाषा मानी जाती है किन्तु दूसरी ओर यह 18 करोड़ लोगों की मातृ भाषा भी है। मैं यहाँ पर हिन्दी के पहले रूप के बारे में चर्चा नहीं करना चाहूँगा। अन्य भारतीय भाषाओं की तरह मैं हिन्दी के दूसरे रूप के बारे में बात कर रहा हूँ और मेरी

बात जितनी हिन्दी के लिए लागू होती है उतनी ही देश की अन्य प्रादेशिक भाषाओं के लिए भी। जब तक हम वैज्ञानिक ज्ञान को शुरू से अपनी भाषा में उपलब्ध नहीं करायेंगे तब तक हम विज्ञान को असली रूप में नहीं पा सकेंगे क्योंकि विज्ञान के बुनियादी तथ्य आमतौर पर आरम्भिक ज्ञान प्राप्त करते समय ही स्वस्थ रूप से अंकुरित होते हैं। पर यदि इस अवस्था में इन बुनियादी बातों को बताने के लिए कक्षा में एक अन्य भाषा की धड़ल्ले से इस्तेमाल की जाती है और इसके बाहर दूसरी तो बेचारा विद्यार्थी उलझन में पड़ जाता है। उसके दिमाग में वैज्ञानिक ज्ञान उतने सहज ढंग से नहीं पनप पाता और इन बुनियादी बातों के बारे में उसकी पकड़ इतनी गहरी नहीं हो पाती जितनी कि तब हो पाती जब कि उनको अपनी ही भाषा में वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त होता। फिर यह भी आज एक माना हुआ तथ्य है कि जिस भाषा में व्यक्ति अपने को व्यक्त करता है, उस भाषा का उसके विचारों पर भी असर पड़ता है।

यही कारण है कि यूरोप में आज से 300 वर्ष पूर्व जिस जमाने में विज्ञान शुरू हुआ था और यूरोप में विद्वानों की भाषा "लैटिन" थी उस समय वैज्ञानिकों का ध्यान अपनी ही भाषा में लिखने के प्रश्न की ओर गया। उस जमाने में लैटिन भाषा का इतना असर था कि न्यूटन

जैसे अंग्रेजी भाषाभाषी वैज्ञानिक ने भी अपना पहला ग्रन्थ "प्रिंसिपिया" 1687 में लैटिन में ही लिखा और 1772 में इसका अंग्रेजी में अनुवाद हो पाया। पर बाद में न्यूटन ने अपना दूसरा ग्रन्थ "आपटिक्स" 1704 में अंग्रेजी में ही लिखा। इसका लैटिन अनुवाद दो वर्ष बाद प्रकाशित हुआ। इसके बाद जब यूरोप के देशों की भाषाएँ परिपक्व हो गईं तब विज्ञान इन देशों की भाषा में ही लिखा जाने लगा।

हाथ और दिमाग का मिलन

इसी क्रम में अंग्रेजी, फ्रेंच और जरमन भाषाएँ वैज्ञानिक साहित्य की भाषाएँ बनीं और तभी इन देशों में विज्ञान व टैक्नालोजी का तेजी से विकास हुआ क्योंकि विज्ञान का विकास किसी देश में तभी होता है जब वहाँ के कारीगर और शिल्पकार—जो हाथ से काम करते हैं और तरह तरह के उपकरण बनाते हैं—उनको सुधारने और आविष्कार करने के लिए दिमाग से सोचें भी। और वे तभी ऐसा कर सकते हैं जब उनको अपने क्षेत्र में हुई वैज्ञानिक प्रगति का हाल मालूम हो। यूरोप में शल्य चिकित्सा का विकास इसी प्रकार हुआ था। वहाँ के जिन हज्जामों ने हाथ के काम के अतिरिक्त दिमाग से सोचा भी था वही बाद में जाकर

सर्जन बन गए। हमारे देश में भी आज यही स्थिति है। हमें सोचना है कि हाथ से काम करने वाले और दिमाग से सोचने वाले लोगों का मिलन किस प्रकार हो सकता है। आज ऐसे अनेक दस्तकार और कारीगर हैं जिनको जरा भी वैज्ञानिक ढंग से सोचने का मौका मिले तो वे अनेक नए सुधार कर सकते हैं। इसलिए आज हिन्दी और भारतीय भाषाओं में ऐसी पुस्तकों की आवश्यकता है जो आसान भाषा में लिखी हों और जिनको पढ़कर हमारे कारीगर और शिल्पकार अपने व्यवसाय को उन्नत कर सकें। इससे न केवल उद्योग ही बढ़ेगा वरन् विज्ञान भी उच्चतम शिखर तक पहुँचेगा क्योंकि जब विज्ञान की पढ़ाई हमारी अपनी भाषा में होगी तब हम प्रकृति को अधिक सहज व वैज्ञानिक ढंग से समझ सकेंगे। दूसरी भाषा में पढ़ने पर तोते की तरह रटकर, दिमाग को आवश्यकता से अधिक जोर देकर जहाँ हम अपनी प्रतिभा को मंद करेंगे वहाँ बुनियादी बात को पूरी तरह समझ भी नहीं पाएँगे। मैं अपनी इस बात को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करना चाहता हूँ यद्यपि उसका विज्ञान से सम्बन्ध नहीं है। हमारे देश में "राम" एक ऐसा शब्द है जिसके पीछे भारतीय संस्कृति का पूरा रूप छिपा हुआ है। अन्य देशों की भाषाओं द्वारा "राम" शब्द का अनुवाद करके कितनी ही तरह क्यों न समझाया जाए, वह बात नहीं आ पाएगी जो

केवल "राम" शब्द का उच्चारण करने से भारतीय लोगों के मन में पैदा होती है और विज्ञान पढ़ाने के बारे में भी मेरा कुछ ऐसा ही अनुभव है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष होने के बाद भी मैं कभी कभी दिल्ली विश्वविद्यालय में एम.एस-सी के विद्यार्थियों को पढ़ाने जाता हूँ। पढ़ाते समय कभी कभी ऐसी गम्भीर बातें आ जाती हैं जो बहुत से विद्यार्थियों की तभी समझ में आती हैं जब टैक्नीकल शब्द तो अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली के ही हों पर विचार अपनी भाषा में ही व्यक्त किये गये हों। फिर वही भाषाएँ आज के वैज्ञानिक युग में जीवित रह पाती हैं जो विज्ञान और तकनीकी बातों को भली-भांति स्पष्ट करने की अपने में क्षमता रखती हैं क्योंकि तभी वे वास्तविक प्रवाह, गति और जीवन को प्राप्त करती हैं।

महिलाएँ वंचित

विज्ञान और तकनीकी साहित्य को भारतीय भाषाओं में उपलब्ध कराना इसलिये भी जरूरी है क्योंकि आज के जीवन में वैज्ञानिक ज्ञान से सबसे अधिक वंचित हमारी माताएँ और बहनें हैं। वे कम से कम पढ़ी-लिखी हैं और जो पढ़ी लिखी हैं भी उनमें से अधिकांश को अपनी ही भाषा का ज्ञान है। पर भारतीय भाषाओं में अच्छा वैज्ञानिक साहित्य उपलब्ध नहीं है, इसलिये वे वैज्ञानिक क्षेत्र में

ज्ञान से 100 वर्ष पीछे पड़ गई हैं और इसी कारण रूढ़ियाँ उनसे अधिक चिपटी हुई हैं। हमारे देश की ग्रामीण नारी को अणु शक्ति और राकेट जैसे जोखिम शब्दों का भी पता नहीं है। इस तरह हम यदि वैज्ञानिक ज्ञान को अपनी ही भाषा में देने का प्रयत्न नहीं करेंगे तो नारी के रूप में देश की आधी जनसंख्या वैज्ञानिक ज्ञान को नहीं पा सकेगी।

मूर्त रूप देने में भय क्यों ?

यह चीज इतनी अनिवार्य होने पर भी इसको हम लोग लागू क्यों नहीं करते इसका कारण शायद यह हो सकता है कि हम प्रगति से डरते हैं। यह बात अजीब सी लग सकती है लेकिन निस्सार नहीं। महात्मा गांधी कहते थे कि हमें आजादी इसलिए नहीं मिलती क्योंकि हम आजादी से डरते हैं। यह सभी जानते हैं कि जिस दिन हमारे दिलों से यह भय निकल गया उसके कुछ समय बाद ही हमें आजादी प्राप्त हो गयी। इसलिये सम्भवत जब हमारे दिलों से उन्नति तथा आगे बढ़ने के बारे में बैठा हुआ भय निकल जाएगा तो इस बात को अपनाने में भी देर नहीं लगेगी। इस विषय पर विचार करते समय हमको गांधी जी द्वारा बतायी गयी यह बात ध्यान में रखनी होगी जिसमें उन्होंने कहा है कि जब कभी हम किसी तरह के असमंजस

मे पढ़ें तो हमें यह सोचना चाहिए कि जो काम हम कर पा रहे हैं उससे हमारे देश के प्रत्येक निवासी और अधिक लोगों को लाभ पहुँचेगा या हानि होगी और यदि उस काम को करने से सबको लाभ पहुँचता है तो हम निश्चित ही यह काम कर देना चाहिए। यही बात आज भारतीय भाषाओं के माध्यम से विज्ञान को पढ़ाने के बारे में लागू होती है। निश्चय ही भारतीय भाषाओं के माध्यम से जब शिक्षा दी जाएगी तो सभी उसका लाभ उठा सकेंगे।

शिक्षा में अंग्रेजी का स्थान

लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि हम उन भाषाओं को न पढ़ें जिनमें आज मुख्य रूप से विज्ञान लिखा जा रहा है। आजकल संसार में प्रतिवर्ष 10 लाख के लगभग वैज्ञानिक लेख 50 हजार वैज्ञानिक पुस्तकें और लगभग इतनी ही वैज्ञानिक रिपोर्टें प्रकाशित होती हैं। इन सब के लिए आमतौर पर रूसी और अंग्रेजी भाषाएँ इस्तेमाल की जाती हैं। संसार का 50 प्रतिशत से अधिक वैज्ञानिक साहित्य अंग्रेजी में प्रकाशित होता है। इसी तरह रूस में लगभग दो हजार पत्रिकाएँ और 55 हजार नई पुस्तकें प्रतिवर्ष प्रकाशित होती हैं। इनमें से 17 हजार पुस्तकें इंजीनियरिंग पर और लगभग 8 हजार पुस्तकें कृषि पर होती हैं। इतने पर भी रूस में विज्ञान के

आज से 100 वर्ष पीछे पड़ गई हैं और इसी कारण रूढ़ियाँ उनसे अधिक चिपटी हुई हैं। हमारे देश की ग्रामीण नारी को अणु शक्ति और राकेट जैसे लोकप्रिय शब्दों का भी पता नहीं है। इस तरह हम यदि वैज्ञानिक ज्ञान को अपनी ही भाषा में देने का प्रयत्न नहीं करेंगे तो नारी के रूप में देश की आधी जनसंख्या वैज्ञानिक ज्ञान को नहीं पा सकेगी।

मूर्त रूप देने में भय क्यों ?

यह चीज इतनी अनिवार्य होने पर भी इसको हम लोग लागू क्यों नहीं करते इसका कारण शायद यह हो सकता है कि हम प्रगति से डरते हैं। यह बात अजीब सी लग सकती है लेकिन निस्सार नहीं। महात्मा गांधी कहते थे कि हमें आजादी इसलिए नहीं मिलती क्योंकि हम आजादी से डरते हैं। यह सभी जानते हैं कि जिस दिन हमारे दिलों से यह भय निकल गया उसके कुछ समय बाद ही हमें आजादी प्राप्त हो गयी। इसलिये सम्भवत जब हमारे दिलों से उन्नति तथा आगे बढ़ने के बारे में बैठा हुआ भय निकल जाएगा तो इस बात को अपनाने में भी देर नहीं लगेगी। इस विषय पर विचार करते समय हमको गांधी जी द्वारा बताई गई यह बात ध्यान में रखनी होगी जिसमें उन्होंने कहा है कि जब कभी हम किसी तरह के असमंजस

में पड़ें तो हमें यह सोचना चाहिए कि जो काम हम करने जा रहे हैं उससे हमारे देश के प्रत्येक निवासी और संबंधित लोगों को लाभ पहुँचेगा या हानि होगी और यदि उस काम को करने से सबको लाभ पहुँचता है तो हम निश्चित ही वह काम कर देना चाहिए। यही बात आज भारतीय भाषाओं के माध्यम से विज्ञान को पढ़ाने के बारे में लागू होती है। निश्चय ही भारतीय भाषाओं के माध्यम से जब शिक्षा दी जाएगी तो सभी उसका लाभ उठा सकेंगे।

शिक्षा में अंग्रेजी का स्थान

लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि हम उन भाषाओं को न पढ़ें जिनमें आज मुख्य रूप से विज्ञान लिखा जा रहा है। आजकल संसार में प्रतिवर्ष 10 लाख के लगभग वैज्ञानिक लेख 50 हजार वैज्ञानिक पुस्तकें और लगभग इतनी ही वैज्ञानिक रिपोर्टें प्रकाशित होती हैं। इन सब के लिए आमतौर पर रूसी और अंग्रेजी भाषाएँ इस्तेमाल की जाती हैं। संसार का 50 प्रतिशत से अधिक वैज्ञानिक साहित्य अंग्रेजी में प्रकाशित होता है। इसी तरह रूस में लगभग दो हजार पत्रिकाएँ और 55 हजार नई पुस्तकें प्रतिवर्ष प्रकाशित होती हैं। इनमें से 17 हजार पुस्तकें इंजीनियरिंग पर और लगभग 8 हजार पुस्तकें कृषि पर होती हैं। इतने पर भी रूस में विज्ञान के

प्रत्येक विद्यार्थी को अंग्रेजी पढ़ना आवश्यक समझा जाता है। यूरोप के सभी देशों में जिनकी भाषा अंग्रेजी नहीं है, वहाँ के विद्यार्थी अंग्रेजी भी पढ़ते हैं। यही बात हमें अपने यहाँ भी लागू करनी चाहिये यानी इसके लिये विद्यार्थी को अंग्रेजी का इतना ज्ञान आवश्यक हो कि वह अंग्रेजी भाषा द्वारा विज्ञान की जो आधुनिकतम धारायें प्रवाहित हो रही हैं उनको अच्छी तरह समझ सके। इसके लिये विद्यार्थी को न केवल हाई स्कूल तक ही अंग्रेजी पढ़नी होगी बरन अंग्रेजी को विश्वविद्यालय स्तर पर भी जारी रखना होगा।

विश्वविद्यालय और अंग्रेजी

न केवल उच्च वैज्ञानिक ज्ञान के लिए ही विद्यार्थियों को अंग्रेजी पढ़ना आवश्यक है बरन् उनको अंग्रेजी का ज्ञान होना इसलिए भी जरूरी है कि आज की हालत में अंग्रेजी द्वारा देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों व शिक्षण संस्थाओं और उनके जरिए भारत के समस्त विद्यार्थियों और शिक्षकों को जोड़ने का काम किया जा सकता है और जो आज देश की भावनात्मक एकता के लिए अत्यधिक जरूरी है। यह तभी हो सकता है जब के बिना किसी बाधा के एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में जाकर अध्ययन और अध्यापन का कार्य कर सकें क्योंकि तभी देश में स्वस्थ विचारों का आदान प्रदान हो सकता है। यदि हमारे प्रदेश विचारों के स्वतंत्र

आदान-प्रदान के मार्ग में तनिक भी रोड़े बनते हैं तो संकीर्ण मनोवृत्ति के पनपने का खतरा और अधिक हो सकता है। सच तो यह है कि हमारे विश्वविद्यालयों को सच्चे रूप में भावनात्मक एकता के केन्द्र बनना चाहिए और जैसा कि एक पश्चिमी विद्वान ने कहा भी है 'यदि विश्वविद्यालयों को सभी प्रकार के स्वतंत्र विचारों में संलग्न रहना है और यदि उनको धर्म भाषा और लिंग के भेदभावों से ऊपर उठकर सभी वर्गों के लिये शिक्षण का केन्द्र बनना है—और जैसा उनको वास्तव में होना भी चाहिए—तो उनको अपने इन कर्तव्यों का निडरता के साथ पालन करना जरूरी है क्योंकि तभी व विश्वविद्यालय न केवल संसार को प्रजातन्त्र के लिए सुरक्षित बना सकते हैं वरन् प्रजातन्त्र को भी संसार के लिए निरापद रख सकते हैं। विश्वविद्यालयों में इस प्रकार के वातावरण को कायम करने के लिए यह जरूरी है कि विचारों के आदान-प्रदान के लिए समान माध्यम हो और जिसके बारे में अभी पिछले कुछ समय पूर्व अनेक सम्मेलनों में चर्चा हुई है विशेषकर मुख्य मंत्रियों के सम्मेलन में और प्रधान मंत्री द्वारा बुलाए गए 'राष्ट्रीय एकता सम्मेलन" में। देश की आज की स्थिति में ऐसा कोई एक समान माध्यम नहीं हो सकता।

आज तो यह जरूरी लगता है कि हमारे विश्वविद्यालयों को माध्यम के रूप में दो भाषाएँ अपनानी होंगी। पहला माध्यम तो उस प्रदेश की भाषा होगी जिसमें वह विश्वविद्यालय स्थापित है और दूसरा माध्यम अंग्रेजी होगा। यह हो सकता है कि इस मत से सभी लोग सहमत न हों। अनेक इसके विरोध में भी हो सकते हैं। जैसा कि एक विद्वान ने कहा भी है 'हम शिक्षा रूपी एक ऐसी गतिशील समस्या को सुलझाने की कोशिश कर रहे हैं जिसका यदि केवल एक शब्द में अर्थ करना चाहें तो वो वह विवाद ही हो सकता है क्योंकि जिस समाज में विचारों का गतिरोध पैदा हो जाता है वहाँ ज्ञान मंद पड़ने लगता है। इसके विपरीत जिस समाज में अविरोधी प्रेम की पृष्ठभूमि में विचारों का 'विवाद' और वाद प्रति-वाद चलता रहता है वहाँ ही ज्ञान और शिक्षा आगे बढ़ती चली जाती है। यह निश्चित है कि आज पढ़ाने के केवल एक माध्यम से काम नहीं चल सकता। केवल अंग्रेजी को माध्यम बनाने से यह तो माना कि हम संसार भर में होने वाली प्रगति और विकास से बराबर सम्पर्क बनाए रख सकेंगे पर इससे हमारी शिक्षण संस्थाएँ और विश्वविद्यालय आम जनता से काफी अलग पड़ जाएँगे

और वे भारतीय संस्कृति की सभ्यता को उसके वास्तविक रूप में प्रकट न कर सकेंगे। यही नहीं आम आदमी की जो वास्तविक आवश्यकताएँ हैं उनका दर्शन भी विद्यार्थियों के दृष्टिकोण में पूरी तरह नहीं उभर पाएगा। किन्तु यदि हम केवल प्रादेशिक भाषाओं को ही विश्वविद्यालयों का माध्यम बनाएँगे तो हम आधुनिक युग की वैज्ञानिक दौड़ में बहुत पिछड़ जाएँगे। क्योंकि आधुनिक साधनों के कारण विज्ञान का इतनी तेजी से विकास हो रहा है कि जब तक नई खोजें छपकर सामने आती हैं तब तक वे पुरानी पड़ जाती हैं।

सच तो यह है कि यदि हमें विश्वविद्यालयों और शिक्षण संस्थाओं को भारतीय संस्कृति और आधुनिक विज्ञान का संगम स्थल बनाना है तो उसके लिए उन्नति रूपी ऐसे रथ का निर्माण करना जरूरी है जिसका एक पहिया प्रदेशीय भाषा हो और दूसरा पहिया अंग्रेजी हो। इन दो पहियों पर चलकर यह रथ प्रगति के पथ पर आगे बढ़ सकता है। यदि इनमें से एक को भी अलग कर दिया तो यह रथ लड़खड़ा कर गिर पड़ेगा।

आज तो यह जरूरी लगता है कि हमारे विश्वविद्यालयों को माध्यम के रूप में दो भाषाएँ अपनानी होंगी। पहला माध्यम तो उस प्रदेश की भाषा होगी जिसमें वह विश्वविद्यालय स्थापित है और दूसरा माध्यम अंग्रेजी होगा। यह हो सकता है कि इस मत से सभी लोग सहमत न हों। अनेक इसके विरोध में भी हो सकते हैं। जैसा कि एक विद्वान ने कहा भी है 'हम शिक्षा रूपी एक ऐसी जटिल समस्या को सुलझाने की कोशिश कर रहे हैं जिसका यदि केवल एक शब्द में अर्थ करना चाहें तो वह विचार ही हो सकता है, क्योंकि जिस समाज में विचारों का प्रतिरोध पैदा हो जाता है वहाँ ज्ञान मंद पड़ने लगता है। इसके विपरीत जिस समाज में अविरोधी प्रेम की पृष्ठभूमि में विचारों का 'विचार' और प्रति भाव चलता रहता है वहाँ ही ज्ञान और शिक्षा आगे बढ़ती चली जाती है।" यह निश्चित है कि आज पढ़ाने के केवल एक माध्यम से काम नहीं चल सकता। केवल अंग्रेजी को माध्यम बनाने से यह तो माना कि हम संसार भर में होने वाली प्रगति और विकास से बराबर सम्पर्क बनाए रख सकेंगे पर इससे हमारी शिक्षण संस्थाएँ और विश्वविद्यालय आम जनता से काफी अलग पड़ जाएँगे

मानव और विज्ञान

इस बात को सभी जानते हैं कि विज्ञान कोई जादू नहीं है। 'जितना गुड़ डालो उतना ही मीठा होगा' वाली कहावत अन्य लोगों की भाँति वैज्ञानिक क्षेत्र में भी लागू होती है क्योंकि विज्ञान से प्राप्त नतीजे उनको हासिल करने के लिये किये गये प्रयत्नों से सीधे सम्बन्धित होते हैं। साथ ही विज्ञान द्वारा क्या कुछ प्राप्त किया जा सकता है इसकी कोई सीमा भी निर्धारित नहीं की जा सकती। विज्ञान का दृष्टिकोण उसकी विधियाँ और उससे प्राप्त होने वाले नतीजे सार्वदेशिक हैं और वे मत-मतान्तरों सम्प्रदायों अथवा भौगोलिक सीमाओं में नहीं बाँधे जा सकते। यही कारण है कि विज्ञान को आगे बढ़ाने म प्रत्येक देश के लोगों ने जिसमे हमारा देश भी शामिल है, भाग लिया है और उसको विकसित करने म हाथ बटाया है। उदाहरण के लिए प्रकृति म पाये जाने वाले मौलिक कणों की बात ही लीजिए। य मूलभूत कण एलोक्ट्रोन हों प्रोटोन हों अथवा दूसरे कण हों या तो 'फरमियोन' कहलाते है या 'बोसोन' कहे जाते हैं। इन दोनों का नामक रण

10

मानव और विज्ञान

इस बात को सभी जानते हैं कि विज्ञान कोई जादू नहीं है। 'जितना गुड़ डालो उतना ही मीठा होगा' वाली कहावत अन्य क्षेत्रों की भांति वैज्ञानिक क्षेत्र में भी लागू होती है क्योंकि विज्ञान में प्राप्त नतीजे उनको हासिल करने के लिए किये गये प्रयत्नों से सीधे सम्बन्धित होते हैं। साथ ही विज्ञान द्वारा क्या कुछ प्राप्त किया जा सकता है इसकी कोई सीमा भी निर्धारित नहीं की जा सकती। विज्ञान का दृष्टिकोण उसकी विधियां और उससे प्राप्त होने वाले नतीजे सार्वदेशिक हैं और वे मत-मतान्तरों, सम्प्रदायों अथवा भौगोलिक सीमाओं में नहीं बांधे जा सकते। यही कारण है कि विज्ञान को आगे बढ़ाने में प्रत्येक देश के लोगों ने जिसमें हमारा देश भी शामिल है भाग लिया है और उसको विकसित करने में हाथ बटाया है। उदाहरण के लिए प्रकृति में पाये जाने वाले मौलिक कणों की बात ही लीजिए। ये मूलभूत कण एलेक्ट्रोन हों प्रोटोन हों अथवा दूसरे कण हों या तो 'फरमियोन' कहलाते हैं या 'बोसोन' कहे जाते हैं। इन दोनों का नामकरण

इनकी संख्या एक लाख के लगभग है। इसके अर्थ यह हुए कि वैज्ञानिक पत्र-पत्रिकाओं की दुगन-अवधि 15 वर्ष है। और यदि इन पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशित होने की यही गति चलती रही तो सन् 2000 ई. में वैज्ञानिक पत्र पत्रिकाओं की संख्या 10 लाख हो जायेगी।

दुगन-अवधि

आगे लिखी बातें आमतौर पर वैज्ञानिक गति की दुगन अवधि निकालने के लिये काम में लायी जाती है (1) प्रतिवर्ष प्रकाशित होने वाले भौतिक अनुसंधान पत्रों की संख्या (2) प्रतिवर्ष सड़क दुर्घटनाओं की संख्या (3) प्रतिवर्ष ज्योतिषियों द्वारा खोजे गये नये सितारों की संख्या (4) वायुयानों द्वारा प्रतिवर्ष प्राप्त की गई गति (5) इस्पात का उत्पादन (6) पत्थर कोयले का उत्पादन (7) अनुवीक्षण यंत्रों की दृष्टि क्षमता (8) बिजली का उत्पादन और (9) संसार में शक्ति-उत्पादन के आँकड़े आदि आदि। उपरोक्त सभी पदार्थों की एक समान विशेषता यह है कि ये सभी प्रत्यक्ष रूप से विज्ञान और टैक्नोलोजी से सम्बन्धित हैं।

इस तरह किसी देश या सारे संसार में वैज्ञानिकों की संख्या 10-15 वर्ष में दुगनी हो जाती है। लेकिन यह बात कवियों राजनीतिज्ञों और संतों के बारे में

की औसत आयु बढ़ गई है। यह माना कि इसका मनुष्य की अधिकतम आयु पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है जो सम्भवतः जिनेटिक गुणों से सम्बन्धित है किन्तु मनुष्य की औसत आयु पिछले सैकड़ों वर्षों से बराबर बढ़ रही है। उदाहरण के लिए आज के आधुनिक देशों में केवल इस शताब्दी में मनुष्य की औसत आयु 10 वर्ष बढ़ गई है। क्योंकि विभिन्न देशों में अनुसंधान और विकास पर खर्च होने वाली धनराशि का प्रत्यक्ष अनुपात न केवल राष्ट्रीय आय प्रति व्यक्ति से सम्बन्धित है बल्कि (और ऐसा होना भी चाहिए) वह नवजात शिशु की सम्भावित आयु से भी सम्बन्धित है। विज्ञान के क्षेत्र में यह बात महत्वपूर्ण है कि पीढ़ी दर पीढ़ी जो ज्ञान एकत्रित होता है वह धरोहर के रूप में हमें उपलब्ध है। विज्ञान में ऐसा नहीं हो सकता कि प्रसिद्ध ज्यामितिविद पाइथागोरस को छोड़कर केवल आर्कमिडीज से ही काम चला लिया जाय या न्यूटन को भुला कर केवल आइंस्टीन के सिद्धान्त अपना लिये जायें। पर दूसरे विषयों में जैसे साहित्य में कालिदास के अभाव में गेथे से भी काम चलाया जा सकता है सोफोक्लिस की बात न करके भी बरनार्ड शा को रचा जा सकता है। आज वैज्ञानिक ज्ञान की अपेक्षा जनसंख्या के बढ़ने की गति बहुत धीमी है और

यही कारण है कि आज प्रति व्यक्ति वैज्ञानिक पूँजी 100 वर्ष पहले के मुकाबले में कई गुना अधिक बढ़ गई है।

वैज्ञानिक युग से पहले विवेक की अपेक्षा परम्परा और रूढ़ियों पर आधारित अधिकारों का ही बोलबाला था। किन्तु वैज्ञानिक युग में ज्ञान ने सबसे ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया है और जिसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ है कि सामन्तवाद को प्रजातन्त्र और मंगलकारी राज्य के सामने घुटने टेकने पड़े।

विज्ञान का एक और भी महत्त्वपूर्ण पहलू है। पहले जमाने में एक देश दूसरे देश की सहायता या तो राजनैतिक दबाव या युद्ध के डर से करता था। इस तरह सहायता देने वाले देश को आर्थिक हानि उठानी पड़ती थी। भौतिक सोना और जमीन के रूप में जो कुछ एक देश पाता था उससे दूसरे देश को हाथ धोना पड़ता था। किन्तु आज सभी देशों की प्रगति और विकास बहुत कुछ विज्ञान और टैक्नोलोजी को उपयोग में लाने पर निर्भर करता है। आज एक विकसित देश अपने वैज्ञानिक ज्ञान और तरीकों को किसी अविकसित देश को बताकर खोता तो कुछ है ही नहीं इसके विपरीत उस देश के इस तौर में उसे कुछ न कुछ लाभ ही होता है। यह एक बड़ी दिलचस्प बात है कि आज का कोई आधुनिक देश यदि चाहे तो प्रशिक्षण प्राप्त आदमियों

की औसत आयु बढ़ गई है। यह माना कि इसका मनुष्य की अधिकतम आयु पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है जो सम्भवतः पैतृक गुणों से सम्बन्धित है किन्तु मनुष्य की औसत आयु पिछले सैकड़ों वर्षों से बराबर बढ़ रही है। उदाहरण के लिए आज के आधुनिक देशों में केवल इस शताब्दी में मनुष्य की औसत आयु 15 वर्ष बढ़ गई है। क्योंकि विभिन्न देशों में अनुसंधान और विकास पर खर्च होने वाली धनराशि का प्रत्यक्ष अनुपात न केवल राष्ट्रीय आय प्रति व्यक्ति से सम्बन्धित है बल्कि (और जैसा होना भी चाहिए) यह नवजात शिशु की सम्भावित आयु से भी सम्बन्धित है। विज्ञान के क्षेत्र में यह बात महत्वपूर्ण है कि पीढ़ी दर पीढ़ी का ज्ञान एकत्र्य होता है यह धरोहर के रूप में हमें उपलब्ध है। विज्ञान में ऐसा नहीं हो सकता कि प्रसिद्ध ज्यामितिविद पायथागोरस को छोड़कर केवल आर्कमिडीज से ही काम चला लिया जाए या न्यूटन को भुला कर केवल आइंस्टीन के सिद्धान्त अपना लिये जायें। पर दूसरे विषयों में जैसे साहित्य में कालिदास के अभाव में गोयटे से भी काम चलाया जा सकता है सोफोक्लिस की बात न करके भी बरनार्ड शा को पढ़ा जा सकता है। आज वैज्ञानिक ज्ञान की अपेक्षा जनसंख्या के बढ़ने की गति बहुत धीमी है और

यही कारण है कि आज प्रति व्यक्ति वैज्ञानिक पूँजी 100 वर्ष पहले के मुकाबले में कई गुना अधिक बढ़ गई है।

वैज्ञानिक युग से पहले विवेक की अपेक्षा परम्परा और रूढ़ियों पर आधारित अधिकारों का ही बोलबाला था। किन्तु वैज्ञानिक युग में ज्ञान ने सबसे ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया है और जिसका सामाजिक परिणाम यह हुआ है कि सामन्तवाद को प्रजातन्त्र और समतावादी राज्य के सामने घुटने टेकने पड़े।

विज्ञान का एक और भी महत्वपूर्ण पहलू है। पहले जमाने में एक देश दूसरे देश की सहायता या तो राजनैतिक दबाव या युद्ध के डर से करता था। इस तरह सहायता देने वाले देश को आर्थिक हानि उठानी पड़ती थी। भौतिक दौलत और ज़मीन के रूप में जो कुछ एक देश पाता था उतना दूसरे देश को हाथ धोना पड़ता था। किन्तु आज सभी देशों की प्रगति और विकास बहुत कुछ विज्ञान और टैक्नोलोजी को उपयोग में लाने पर निर्भर करता है। आज एक विकसित देश अपने वैज्ञानिक ज्ञान और तरीकों को किसी अविकसित देश को बताकर खोता तो कुछ है ही नहीं इसके विपरीत लेन देन के इस सौदे में उसे कुछ न कुछ लाभ ही होता है। यह एक बड़ी दिलचस्प बात है कि आज का कोई आधुनिक देश यदि चाहे तो प्रशिक्षण प्राप्त कारीगरों

इंजीनियरों और उपकरणों को लेकर एक अविकसित देश के विकास में बहुत बड़ा हाथ बटा सकता है। ऐसा करने से उसे भी कोई आर्थिक हानि नहीं पहुँचती। इसलिए आज विज्ञान द्वारा यह सम्भव हो गया है कि सभी देश तेजी से विकसित हो सकते हैं। यदि इन देशों को आगे बढ़ने में आज कोई रुकावट है तो वह राजनैतिक है या मनोवैज्ञानिक।

इस शताब्दी में परमाणु और भौतिक कणों की क्रिया प्रतिक्रिया से सम्बन्धित ज्ञान को समझने में बड़ी प्रगति हुई है। इस क्षेत्र में अर्जित यह नया अनुभव ज्ञान मीमांसा के लिये महत्वपूर्ण है। क्योंकि परमाणु-अध्ययन एक ऐसा विषय है जिसमें प्रकृति के गम्भीरतम रहस्यों का उद्घाटन होता है। ज्ञान मीमांसा के उपरोक्त तथ्य जिसे इतिहासकार और मानवतावादी बहुत पहले से ही मानते हैं अब भौतिकविदों को भी मानना पड़ रहा है। परमाणु मंडली का परीक्षणों से प्राप्त विचित्र व्यवहार के कारण ज्ञान मीमांसा का उपरोक्त अनुभव आज पर माणु प्रक्रिया के बारे में पाया गया है। उदाहरण के लिए स्थिति और वेग जैसे सामान्य विचार भी उस समय तक एलोक्ट्रोन पर लागू नहीं किये जा सकते जब तक कि उन पर कुछ विशेष प्रतिबन्ध लगाकर उनकी परिभाषाओं को सीमित न कर दिया गया हो। परमाणु-भौतिकी की

इस विचित्र स्थिति के बारे में भी नीलसबोहर ने बड़ा जोर दिया है और उसे स्पष्ट किया है। यह बात सहपूरक सिद्धान्त (Principle of Complementarity) के नाम से जाना जाता है। इस सिद्धान्त में दृष्टिकोण और कार्य प्रणाली के लिहाज से कुछ बातें ऐसी हैं जो न केवल मानवतावादी और समाज शास्त्रियों के लिए उनके काम में महत्वपूर्ण हो सकती हैं वरन् जो ऐसे व्यक्तियों के लिए भी लाभदायक हो सकती हैं जो आत्मा की खोज में लगे हुए हैं। यहाँ पर मैं इस बारे में और अधिक चर्चा न करूँगा पर मैं केन उपनिषद् और प्रसिद्ध वैज्ञानिक डीराक ने इस बारे में जो कुछ कहा है उन विचारों से पाठकों को अवगत कराना चाहूँगा।

डीराक अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "क्वाटम मेकनिक्स के सिद्धान्त" (Principles of Quantum Mechanics) की भूमिका में लिखते हैं —

इस सदी में सैद्धान्तिक भौतिकी की कार्यप्रणालियों के विकास में भारी प्रगति हुई है। शास्त्रीय परम्परा के अनुसार संसार में बाह्य पदार्थों (कण ठोस द्रव्य प्रकाश तरंग आदि) का एक संगठन मात्र है और इन बाह्य पदार्थों के व्यवहार को आसानी से समझने के लिए उनके सम्बन्धित गतियों और यन्त्र-विन्यास आदि के बारे में कुछ मान्यतायें बना ली गयी हैं। किन्तु अभी निम्न कुछ

समय से इस बात का पता चला है कि प्रकृति कुछ दूसरे ही तरीकों से काम करती है। प्रकृति के बुनियादी नियमों के बारे में इस जगत को बताने के लिये हमने जो काल्पनिक चित्र बनाये हुए हैं वे प्रत्यक्ष रूप से काम नहीं करते। इसके विपरीत वे एक ऐसे अवचेतन जगत का नियन्त्रण करते हैं जिसका काल्पनिक चित्र कुछ असंगतियों के बिना नहीं बनाया जा सकता। प्रकृति के इन नियमों को बताने में शास्त्रीय गणित की एक विशेष शाखा Mathematics of Transformations का उपयोग होता है।

दार्शनिक दृष्टि से उपरोक्त स्थिति काफी सन्तोषजनक है क्योंकि इसमें दृष्टा को बाह्य पदार्थों को देखने में जो संगतियाँ नजर आती हैं उनको प्रवेश कराने में वह जो भाग अदा करता है उसको अधिकाधिक मान्यता दी जाती है और प्रकृति के नियमों में एकरूपता का लोप हो जाता है। किन्तु भौतिकी का विद्यार्थी इस स्थिति के सामने बड़े असमंजस में पड़ जाता है।

ऐसे नये सिद्धान्त यदि कोई उनको गणितीय भूमिका से विलग करके देखे तो उसे मालूम होगा कि ये भौतिकी के ऐसे विचारों पर आधारित हैं जिनकी विद्यार्थियों द्वारा अजित अब तक के ज्ञान द्वारा व्याख्या नहीं की जा सकती और जिनको पूरी तरह से शब्दों में ठीक तरह से

व्यक्त भी नहीं किया जा सकता। जैसे प्रत्येक नवजात का संसार में आने पर बुनियादी बातें सीखनी पड़ती हैं भौतिकी के नवीन विचारों और सिद्धान्तों को भी वैसे ही एक लम्बे काल तक उनके गुण धर्मों और उपयोगों से परिचित होने पर ही सीखा जा सकता है।"

केन उपनिषद् का इस चुनौती देने वाले वाक्य से ही आरम्भ हुआ है, जिसके आदेश से मस्तिष्क में पूर्ण चेतना आती है जिस के आदेश से नवजात शिशु में जीवन का संचार होता है संसार में कौन सी ऐसी शक्ति है जिसके कारण मनुष्य बोलता है—ईश्वर ही इन सब बातों पर निगाह रखता है।"

इस उपनिषद् में आगे कहा गया है कि 'उसकी दृष्टि वहां तक नहीं पहुंच सकती न उसकी वाक्शक्ति और न उसका मस्तिष्क ही उसके बारे में जान सकता है। न तो हम स्वयं जानते हैं और न हम यह बता ही सकते हैं कि उस (भगवान) के बारे में कैसे शिक्षा दी जाये। क्योंकि वह 'ज्ञात' से भिन्न है और 'अज्ञात' से परे है। हमने तो केवल यह बात प्राचीन विचारकों से ही सुनी है जिन्होंने उसको (भगवान) हमारी समझ की सीमा के अन्दर पाया है।"

आगे इसी उपनिषद् में कहा गया है "वह (भगवान्) जिसके द्वारा (भगवान्) यह नहीं सोचा गया उसको भी

समय से इस बात का पता चला है कि प्रकृति कुछ दूसरे ही तरीकों से काम करती है। प्रकृति के बुनियादी नियमों के बारे में इस जगत को समझाने के लिये हमने जो काल्पनिक चित्र बनाये हुए हैं वे प्रत्यक्ष रूप से काम नहीं करते। इसके विपरीत वे एक ऐसे अवचेतन जगत का नियन्त्रण करते हैं जिसका काल्पनिक चित्र कुछ असंगतियों के बिना नहीं बनाया जा सकता। प्रकृति के इन नियमों को बनाने में शास्त्रीय गणित की एक विशेष शाखा Mathematics of Transformations का उपयोग होता है।

दार्शनिक दृष्टि से उपरोक्त स्थिति काफी सन्तोषजनक है क्योंकि इसमें दृष्टा को बाह्य पदार्थों को देखने में जो संगतियाँ नजर आती हैं उनका प्रबन्ध कराने में वह जो भाग अदा करता है उसको अधिकाधिक मान्यता दी जाती है और प्रकृति के नियमों में एकरूपता का लोप हो जाता है। किन्तु भौतिकी का विद्यार्थी इस स्थिति के सामने बड़े पशोपेश में पड़ जाता है।

ऐसे नये सिद्धान्त यदि कोई उनको गणितीय भूमिका से भिन्न करके देखे तो उसे मालूम होगा कि ये भौतिकी के ऐसे विचारों पर आधारित हैं जिनकी विद्यार्थियों द्वारा अर्जित अब तक के ज्ञान द्वारा व्याख्या नहीं की जा सकती और जिनको पूरी तरह से शब्दों में ठीक तरह से

व्यक्त भी नहीं किया जा सकता। जैसे प्रत्येक नवजात को संसार में आने पर बुनियादी बातें सीखनी पड़ती हैं भौतिकी के नवीन विचारों और सिद्धान्तों को भी वैसे ही एक लम्बे काल तक उनके गुण धर्मों और उपयोगों से परिचित होने पर ही सीखा जा सकता है।

केन उपनिषद् तो इस चुनौती देने वाले वाक्य से ही आरम्भ होता है, जिसके आदेश से मस्तिष्क में पूर्ण चेतना आती है, जिस के आदेश से नवजात शिशु में जीवन का संचार होता है, संसार में कौन सी ऐसी शक्ति है जिसके कारण मनुष्य बोलता है—ईश्वर ही इन सब कामों पर निगाह रखता है।"

इस उपनिषद् में आगे कहा गया है कि "उसकी दृष्टि उस तक नहीं पहुँच सकती। न उसकी वाक्शक्ति और न उसका मस्तिष्क ही उसके बारे में जान सकता है। न तो हम स्वयं जानते हैं और न हम यह बता ही सकते हैं कि उस (भगवान) के बारे में कैसे शिक्षा दी जाये। क्योंकि वह 'ज्ञात' से भिन्न है और 'अज्ञात' से परे है। हमने तो केवल यह बात प्राचीन विचारकों से ही सुनी है जिन्होंने उसको (भगवान) हमारी समझ की सीमा के अन्दर पहुँचाया है।

आगे इसी उपनिषद् में कहा गया है "वह (भगवान) जिसके द्वारा (भगवान्) यह नहीं सोचा गया उसको भी

इसका (भगवान्) विचार आता है और जिसके द्वारा इसका (भगवान्) चिन्तन मनन किया गया है इसको वह नहीं जानता। यह (भगवान्) उनको भी अज्ञात है जो इसके (भगवान्) बारे में चर्चा करते हैं और जो इसका (भगवान्) विवेचन नहीं करते यह उनके लिए भी विवेचनीय है।"

(श्री अरविन्द द्वारा अनुवादित)

प्रत्येक मनुष्य जानता है कि आधुनिक भौतिकी अन्तरिक्ष की खोज अणु न्यूक्लीयजैविकी आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधान के बड़े रोचक क्षेत्र बन गये हैं। उदाहरण के लिए कहा जाता है कि मनुष्य ने पिछले दस वर्षों में जीवन प्रक्रियाओं के बारे में (जैसे जीन या जिनेटिक की प्रकृति प्रोटीन संश्लेषण आदि) जितना अधिक ज्ञान लिया है उतना कुल मिलाकर पिछली सम्पूर्ण शताब्दियों में भी वह नहीं जान पाया था और जैसा कि प्रसिद्ध वैज्ञानिक नीरनबर्ग ने कहा है (पैटिन टाइम्स का 21 जुलाई 1961 का अंक)

'जड़ पदार्थों से जैविक पदार्थों को बनाने और उनके संश्लेषण करने में जितनी प्रगति हुई है उससे कहा जा सकता है कि इस शताब्दी के अन्त तक जितनी सम्भावना मनुष्य के द्वारा ग्रहों की सफल परिक्रमा की है उतनी ही

सम्भावना जड़ पदार्थों को चेतन पदार्थों में बदलने की हो गयी है।

यदि हमारा जगत परमाणु युद्ध की ज्वालाओं में नहीं झोंका जाता तो निश्चित ही उपरोक्त दोनों बातों को मनुष्य द्वारा पूर्णरूप दिया जा सकेगा। इन सम्भावित घटनाओं के निर्माण और सृजन में हम स्वयं क्या भाग अदा करते हैं यह बात बुनियादी तौर पर इस पर निर्भर करती है कि हमने ज्ञान अर्जन और शिक्षा को जीवन में कौन सा दर्जा दिया है।



विज्ञानों की राष्ट्रीय अकादमी, भारत की 32 वें वार्षिक सम्मेलन के अध्यक्ष भाषण का रूपान्तर।

सम्भावना जड़ पदार्थों को चेतन पदार्थों में बदलने की हो गयी है।"

यदि हमारा ज्ञान परमाणु युग का। स्थापनाओं में नहीं फैल जाता तो निश्चित ही भाग्योदय वालों वाला था मनुष्य द्वारा पूर्णरूप किया जा सकता। इस सम्भावित घटनाओं के निर्माण और सृजन में हम स्वयं क्या भाग अदा करते हैं यह बात बुनियादी तौर पर इस पर निर्भर करती है कि इसने ज्ञान अर्जन और शिक्षा का जीवन में कौन सा दर्जा दिया है।

